राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद

(प्रथम शतक)

प्रो० कन्हैयालाल सहल एम. ए.
अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत विभाग
बिड़ला कालेज, पिलानी

प्रथम संस्करण
१००० } मार्च १९४७ { मूल्य २।) रुपया

प्रकाशकः—

कन्हैयालाल सहल एम. ए.

बिड़ला कालेज, पिलानी (जयपुर स्टेट)

प्रथम संस्करण

सं २००३

पालचन्द इलेक्ट्रिक प्रेस,

स्वर्गस्थ पितृदेव

||

की

||

पावन स्मृति

में

"जिसने न माना कभी लोहा तुच्छ मृत्यु का
जीने का वही तो अधिकारी है जगत् में।"

भूमिका

संस्कृति शब्द अंग्रेजी के कल्चर शब्द के आधार पर भारतीय भाषाओं में प्रचलित हुआ है। कहते हैं, मानसिक खेती के अर्थ में प्रथम बार 'कल्चर' शब्द का प्रयोग लार्ड बेकन ने किया था। जिस प्रकार खेती के लिए जमीन तैयार करते समय कंकड़-पत्थर तथा अन्य अनावश्यक वस्तुओं को दूर कर दिया जाता है ताकि उसमें बीज डालने पर अच्छी फसल हो सके, उसी प्रकार मनुष्य के स्वभाव में, उसकी मनोवृत्तियों में जो संस्कार, जो परिमार्जन अथवा परिष्कार होता है उसे संस्कृति कह सकते हैं। जहाँ संस्कृति है वहाँ उदारता के अवश्य दर्शन होंगे। बँधे हुए तालाब का पानी गँदला हो जाता है, स्वच्छ पानी के लिए मुक्त प्रवाह आवश्यक है-जो मनुष्य अपने संकीर्ण स्वार्थों के घेरे में आबद्ध रहता है, उसकी मनोवृत्ति भी दूषित ही समझिये। ऐसे व्यक्ति को हम संस्कारी व्यक्ति नहीं कह सकते। जिस प्रदेश में एक भी संस्कार-संपन्न मानव विचरण करता है, उस स्थान का वातावरण ही सुरभित और आलोकित हो उठता है। दूसरों की भलाई करने में जहाँ मनुष्य को सुख मिलने लगता है, वहाँ वह जंगली पाशविकता के मार्ग को छोड़ कर संस्कृति के मार्ग में पदार्पण करता है। पशुओं में जिस तरह स्वार्थ की प्रबलता देखी जाती है, उस तरह संस्कार-संपन्न मानव में नहीं। वस्तुतः देखा जाय तो मानवोचित गुणों का विकास ही संस्कृति का प्रमुख लक्षण है।

सभ्यता और संस्कृति इन दो शब्दों के तारतम्य पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। कुछ लोग समानार्थक मान कर इनका प्रयोग करते देखे जाते हैं किन्तु दोनों शब्दों में बड़ा अन्तर है। सभ्यता यदि देह है तो संस्कृति शरीर के भीतर रहने वाला प्राण। सभ्यता यदि पुष्प है तो संस्कृति है उसके भीतर रहने वाली सुगन्ध। एक व्यक्ति अपने मस्तिष्क की सहायता से किसी वस्तु का आविष्कार करता है किन्तु उसकी सन्तान को वह वस्तु अनायास प्राप्त होजाती है। मोटर, रेल, वायुयान आदि का यांत्रिक ज्ञान हमें न भी हो, तब भी हम उनका बरा-बर उपयोग कर सकते हैं। ये सब सभ्यता के उपकरण हैं, संस्कृति के नहीं। व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, गेटे और शेक्सपियर के ग्रन्थों का रसास्वादन कोई शिक्षित व्यक्ति ही कर सकता है। इससे सिद्ध है कि संस्कृति पर सहज ही अधिकार प्राप्त न ीं किया जा सकता; उसके लिए साधना की आवश्यकता होती है। बुद्धि जिस तरह उधार नहीं मिलती, उसी तरह संस्कृति भी उधार नहीं मिलती। धन से भी संस्कार नहीं खरीदे जा सकते। धन हो तो मोटर खरीदिये, रेडियो का आनन्द उठाइये, वायुयान में सफर कीजिये किन्तु सचाई, उदारता आदि संस्कार कहाँ से लावें? उनको तो हमें अपने जीवन में चरितार्थ करके दिखाना होगा।

सभ्यता का अनुकरण हो सकता है, संस्कृति का नहीं। मैंचेस्टर के ढंग के कल-कारखाने खुल सकते हैं; बैंक, बीमा कम्पनी आदि सबकी स्थापना की जा सकती है, साधन उपलब्ध

होने पर टैंक, वायुयान यहाँ तक कि परमाणु बम भी चाहे जितनी संख्या में तैयार किये जा सकते हैं किन्तु कहाँ है वह फैक्टरी जहाँ मीराँ, प्रताप और पाबू की सजीव प्रतिमाएँ आर्डर देकर बनवाई जा सकें ? अनन्त मानव-समुदाय की शक्ति का एक साथ प्रयोग करके भी टैगोर, बुद्ध और शंकर आदि का स्वेच्छा से निर्माण नहीं किया जा सकता। लाखों, लाखों ही क्या असंख्य रामा-श्यामाओं को मिला कर भी राम और कृष्ण नहीं बनाये जा सकते। सभ्यता से संबन्ध रखने वाली वस्तुएँ यदि एक बार बन गयीं तो सारे संसार में फैल जाती हैं और उनका सहज ही नाश नहीं हो पाता किन्तु विभिन्न संस्कृतियों के संघर्ष तथा परतन्त्रता के कारण संस्कृति के विलुप्त अथवा विकृत होने की आशंका बनी रहती है। इस दृष्टि से देखे जाने पर सांस्कृतिक रक्षा का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण हो जाता है। संस्कृति अथवा मानवोचित गुणों को नष्ट कर यदि हम सारे संसार का राज्य भी प्राप्त करलें तो वह भी किस काम का ? इसीलिए महात्मा गाँधी जैसा सुसंस्कृत मानव अहिंसक साधनों द्वारा स्वराज्य-प्राप्ति की अपील करता है। सच तो यह है कि संस्कृति-लोप से बड़ी हानि इस दुनिया में कोई नहीं।

किन्तु संस्कृति तो एक अमूर्त भाव है, उसके स्वरूप का निर्णय कैसे हो ? सभी देशों में ऐसे महापुरुष उत्पन्न होते हैं जो मानवोचित गुणों को अपने जीवन में चरितार्थ कर संस्कृति का सच्चा स्वरूप खड़ा कर जाते हैं। राजस्थान में भी ऐसे अनेक

महापुरुष हुए हैं जिन्होंने बलिदान, स्वामिभक्ति, उदारता तथा प्रतिज्ञा-पालन का दिव्य आदर्श संसार के सामने रखा है। गुणों की प्रशंसा करने वाले और अवगुणों की निर्भीकतापूर्वक भर्त्सना करने वाले कवियों का भी यहाँ अभाव नहीं रहा। राजस्थान में इस प्रकार के असंख्य दोहे और गीत प्रचलित हैं जिनमें यहाँ के युद्धवीरों, दयावीरों और दानवीरों की गौरव-गाथा का उल्लेख हुआ है। जिन घटनाओं में यहाँ के चारणों को मानवोचित गुणों का निदर्शन दिखलाई पड़ता उन्हें वे गीत और दोहों के रूप में जड़ दिया करते थे। ये पद्य चारणों की जबान पर ही न रह कर सर्वसाधारण की जबान पर आ जाते थे। बहुत से दोहे तो ऐसे मिलते हैं जिनके निर्माताओं का कोई पता नहीं चलता किन्तु फिर भी जन मानस की छाप उन-पर अंकित होने से वे अत्यन्त लोकप्रिय हो गये हैं। किन्तु इसका यह अर्थ न समझा जाय कि राजस्थान के चारण विरुदावली बखानने वाले निरे चाटुकार थे। वे जब कभी कायरता, कृपणता अथवा अन्य किसी प्रकार का अनौचित्य देखते तो अपने 'विसहरों' (निन्दासूचक छन्दों) द्वारा उसकी भर्त्सना किये बिना नहीं रहते थे। जिस समाज में बुरे को बुरा कहने वाला नहीं होता, उस समाज का पतन हो जाता है। वाल्मीकि रामायण की सीता ने इसी बात को लक्ष्य में रखते हुए रावण से कहा था—

नूनं न ते जनः कश्चिदस्मिन्निःश्रेयसि स्थितः
निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद्विगर्हितात ॥

इह संतो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे
यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता ॥ (सुन्दरकाण्ड)

अर्थात् तुम्हारे कल्याण की कामना करने वाला यहाँ कोई दिखलाई नहीं पड़ता। यदि होता तो क्या वह तुम्हें इस घृणित कर्म करने से रोकता नहीं ? अरे, यहाँ संत क्या हैं ही नहीं अथवा संतों के मार्ग का तुम अनुसरण ही नहीं करते ? तभी तो तुम्हारी विपरीत बुद्धि आचार-विहीन हो गई है।

राजस्थान में ऐसी असंख्य ऐतिहासिक किंवतन्तियाँ प्रचलित हैं जिनसे यहाँ की संस्कृति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। कुछ जनश्रुतियाँ तो ऐसी हैं जिनको सुन कर तबीयत फड़क उठती है और हृदय में उदात्त भावनाओं का संचार होता है। अतती की स्वर्णिल स्मृति में स्वभावतः ही बड़ा आकर्षण पाया जाता है और फिर उस राजस्थान का तो कहना ही क्या जिसका महिमा-मय अतीत अनेक मानवोचित गुणों के लिये आज भी स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान कर सकता है। सांस्कृतिक मंदिर की अखण्ड ज्योति को जगाये रखने में राजस्थान के चारणों ने जो महत्त्व-पूर्ण योग दिया है, उसके स्मरण-मात्र से ही चित्त पुलकित हो उठता है।

ब्राउनिंग ने अपनी एक कविता में कहा है कि जीवन भर मैं संघर्ष करता रहा हूँ किन्तु मेरी अन्यतम इच्छा है कि हे मृत्यु ! जब कभी भी तू आवे, चुपके चुपके आकर मेरा प्राणान्त न कर

डालना, प्रत्यक्ष होकर मुझसे युद्ध करना। मैं तो जूझता ही रहा हूँ, यह एक युद्ध और सही। मृत्यु से लोहा लेने की इस वीर-भावना की बड़ी प्रशंसा की जाती है और वस्तुतः यह सराहनीय है भी, किन्तु ब्राउनिंग को ही यदि यह ज्ञात होता कि भारतवर्ष में राजस्थान जैसा एक ऐसा अद्वितीय प्रान्त भी है जहाँ मृत्यु को त्यौहार के रूप में मनाया जाता है; धारा-तीर्थ में स्नान करना जहाँ परम पुण्य और पवित्र कर्तव्य समझा जाता है तो निश्चय ही उनकी वाणी प्रफुल्लित होकर प्रशंसा के बहुमुखी उद्गारों में फूट पड़ती। राजस्थान का यह मरण-त्यौहार तो एकदम नवीन है और यह कोरी कवि-कल्पना नहीं—यह एक ऐसा समुज्ज्वल ऐतिहासिक तथ्य है जिस पर सहस्रों सुन्दर भावनाएँ भी न्यौछावर की जा सकती हैं। राजस्थानी साहित्य के आलोक में उस अतीत युग का दर्शन कर इस मरण त्यौहार का आनन्द तो उठाइये—

आज घरे सासू कहै, हरख अचानक काय।
वहू वलेवा हूलसै, पूत मरेवा जाय॥

अर्थात् सास कहती है कि आज घर में यह अकस्मात् हर्ष कैसा? ओह, अब उन्हें मालूम हुआ कि पुत्र धारा-तीर्थ में स्नान करने जा रहा है और पुत्र-वधू सती होने को हुलस रही है। देश की बलिवेदी पर जब पुत्र अपने प्राणों को न्यौछावर कर देता था तब वीर-प्रसविनी माता को पुत्र-जन्म से भी अधिक हर्ष का अनुभव होता था—

सुत मरियो हित देस रै, हरख्यो बन्धु समाज ।
माँ नहँ हरखी जनम दे, जितरी हरखी आज ॥

रण-चंडी का रास रच कर जहाँ मरण-महोत्सव मनाया जाता था, पुत्र को स्तन-पान कराते समय जो सिन्धु राग से आनन्दित हुआ करती थीं, कृपाण लेकर दरवाजे से आगे बढ़ जो डाकुओं को ललकारा करती थीं, जो कुल की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए जौहर की ज्वाला में जीवित जल जाया करती थीं, जो हमेशा उठ कर भगवान् भास्कर को इस प्रार्थना के साथ अर्घ्य देती थीं कि हे सविता ! मेरी कोख को कभी न लजाना, जो अपने स्तनों से ऐसे आग के टुकड़ों को पैदा करती थीं कि दिग्पालों को ललकार कर जिनके पैर बढ़ाते ही पृथ्वी काँप उठती थीं

धरतां पग धर धूजती, दागलतां दिगपाल ।
जणती रजपूताणियाँ, थण थी झालबँवाल ॥

कहाँ हैं आज वे नारियाँ जो 'हला न देणी आपणी' की लोरी देती हुई पलने में ही पुत्र को इस मरण-महोत्सव का महत्त्व सिखला दिया करती थीं ? राष्ट्रीय जागरण के इस युग में आज की नारी राजस्थान की उस वीर नारी से क्या निर्भीकता का पदार्थ-पाठ न सीखेगी ?

रवि बाबू ने अपने काव्य द्वारा मृत्यु को गौरवान्वित किया है; जीवन की पूर्ति के रूप में उन्होंने जो मृत्यु का चित्रण किया

है, वह उनकी बड़ी देन समझी जाती है किन्तु फिर भी वह दर्शन शास्त्र ही रहा। गुरुदेव ने बतलाया कि मृत्यु किसी भी प्रकार डरने की वस्तु नहीं, वह तो जीवन के अनन्त प्रवाह में एक विश्राम मात्र है, माता के एक स्तन से हट कर दूसरे स्तन के लग जाना है। मृत्यु के इस तत्त्वज्ञान का जैसा मूर्तिमन्त रूप राजस्थानी साहित्य में मिलता है उस पर केवल राजस्थान ही नहीं, समूचा भारतवर्ष गौरव से अपना मस्तक ऊँचा कर सकता है। राजस्थान के इन लाड़ले सपूतों ने मृत्यु के साथ जो खिलवाड़ किया था उससे स्वयं मृत्यु भी भयभीत हो गई होगी ! *

शौर्य और पराक्रम की जैसी अद्भुत कल्पना राजस्थान के कवि की लेखनी से प्रसूत हुई है उसको पढ़ कर आज भी हमारी बुद्धि चकरा जाती है। एक योद्धा रणाङ्गण में शत्रु-सेना से लोहा लेता रहा। युद्ध करते करते उसका मुण्ड धराशायी हो गया किन्तु फिर भी वह कबन्ध के रूप में लड़ता रहा और उसने सारी सेना का सफाया कर दिया। योद्धा का घोड़ा जब उस वीर के कबन्ध को सही सलामत लेजाकर गृह-द्वार पर जा खड़ा हुआ तब उसकी स्त्री क्या देखती है कि

> भड़ बिण माथे जीतियो, लीलो घर ल्यायोह।
> सिर भूल्यो भोलो धणां, सासू रो जायोह॥

---

* 'कायरों की मृत्यु साँस-साँस पर होती है
काँपता है मरण पराक्रमी की छाया से !' (आर्यावर्त)

पत्नी कहती है कि मेरी सास का पुत्र भी कितना भोला है—वह अपना सिर ही रणाङ्गण में भूल आया !! इस दोहे को अस्वाभाविक कह कर कोई इसका उपहास न करे—सिर पर मँडराती हुई मृत्यु की अवहेलना करने वाली पत्नी की इस उक्ति में पति के असाधारण शौर्य पर हर्षपूर्ण आश्चर्य की व्यंजना जिस नाटकीय चित्रात्मकता के साथ हुई है वह अद्‌भुत है, हाँ, नितान्त अद्‌भुत है !

किन्तु क्या आपने कभी सोचा है कि राजस्थान के ये खिलाड़ी मृत्यु जैसी भयंकर वस्तु के साथ इस प्रकार का खेल कैसे खेल सके ? प्राणों का बलिदान कोई हँसी-खेल नहीं है, यह तभी संभव है जब प्राणों से भी प्यारा कोई महान् आदर्श सामने हो। किसी प्रबल वेगमयी, बलवती एवं स्फूर्तिदायिनी भाव-धारा से अनुप्राणित हुए बिना मृत्यु का निर्भीकतापूर्वक विराट् आलिंगन कभी सम्भव नहीं हो सकता। यदि ऐसा न हो तो किसी को क्या पड़ी है जो मृत्यु की विभीषिकाओं से खेले ? स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के निमित्त राजस्थान ने बड़ा भारी [illegible]र्ग किया है। उच्च शौर्य, भव्य त्याग, आत्म बलिदान, [illegible]त्र्य-प्रेम, शरणागत-रक्षा, स्वामि-भक्ति, दानशीलता, आन- और प्रतिज्ञा-पालन का जो ज्वलन्त आदर्श राजस्थानी [illegible]हित्य में कूट-कूट कर भरा है वह किसी भी सहृदय व्यक्ति का [illegible]न अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। इतना ही नहीं, [illegible]ो भी देश और किसी भी काल का सच्चा वीर उससे किसी न

किसी अंश में अवश्य स्फूर्ति ग्रहण कर सकता है। गायत्री-मंत्र में बुद्धि को सत्पथ की ओर प्रेरित करने के लिए भगवान् सविता से प्रार्थना की गई है। सूर्यदेव को संबोधित कर निम्नलिखित दोहे में चारण ने जो इच्छा प्रकट की है उसमें भी मन्त्र की सी पवित्रता और शक्ति भरी है:—

> भला ऊग्या भाण, भाण तुहारा भामणां ।
> मरण जियण लग माण, राखो कश्यप राव उत ॥

अर्थात् हे सूर्य ! तुम भले उदित हुए, मैं तुम पर न्यौछावर होता हूँ। हे कश्यप-कुमार ! मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि मृत्यु पर्यन्त मेरी इज्जत-आबरू, मेरी मान-मर्यादा की रक्षा करना।

आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए जो बलिदान राजस्थान ने किये हैं उनके स्मरण मात्र से आज रोमांच और हर्षोद्रेक हो आता है। यह विश्वास होने लगता है कि जिस देश को इस प्रकार की महामहिमशाली संस्कृति का बल प्राप्त हो, उसे निराश होने की आवश्यकता नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक में इस प्रकार के करीब सौ प्रवाद[1] इकट्ठे किये गये हैं जिनसे राजस्थान के सांस्कृतिक जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इन प्रवादों के ऐतिहासिक तथ्यातथ्य के सिद्धान्त को किसी ने इस प्रकार अंग्रेजी में रूपान्तरित किया है:—

---

१ किंवदन्ती, जनश्रुति अथवा लोकोक्ति के अर्थ में प्रचलित इस के 'प्रवाद' शब्द को मैंने बंगला से ग्रहण किया है।—लेखक

Without fiction there will be a want of flavour,
But too much fiction is the house of sorrow.
Fiction should be used in that degree
That salt is used to flavour flour
As a large belly shows comfort to exist,
As rivers show that brooks exist,
As rain shows that heat has existed,
So songs show that events have happened +

बिना कल्पना के अथवा बिना नमक-मिर्च मिलाये मज़ा नहीं आता किन्तु अत्यधिक कल्पना का प्रयोग भी दुःख का कारण बन जाता है। जिस प्रकार स्वाद की वृद्धि के लिए आटे में नमक डाला जाता है, उसी प्रकार रसास्वाद के लिए उतनी ही मात्रा में कल्पना का प्रयोग किया जाना चाहिए। बढ़ी हुई तोंद से जैसे यह अनुमान लगा लिया जाता है कि तोंदधारी को आराम मिला है, नदियों से जिस प्रकार नालों की सत्ता प्रकट हो जाती है; वर्षा से ही जैसे प्रकट हो जाता है कि गर्मी पड़ चुकी है, उसी प्रकार गीतों से इस बात का आभास मिलता है कि उनमें वर्णित घटनाएँ घटित हो चुकी हैं।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि इन प्रवादों में राज[illegible] का वैज्ञानिक इतिहास सन्निहित है किन्तु इस प्रकार के [illegible] और दोहों की उपयोगिता को राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहा[illegible]

+ [illegible] (Forbes) पृ० २६६

भी ओझाजी ने भी स्वीकार किया है जैसा कि निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है—

"राजपूत राजाओं, सरदारों आदि के वीर कार्यों, युद्धों में लड़ने या मारे जाने, किसी बड़े दान के देने या उनके उत्तम गुणों, अथवा राणियों तथा ठकुराणियों के सती होने आदि के संबन्ध में डिंगल भाषा में लिखे हुए हजारों गीत मिलते हैं। ये गीत चारणों, भाटों, मोतीसरों और भोजकों के बनाये हुए हैं। इन गीतों में से अधिकतर की रचना वास्तविक घटना के आधार पर की गई है, परन्तु इनके वर्णनों में अतिशयोक्ति भी पाई जाती है। युद्धों में मरने वाले जिन वीरों का इतिहास में संक्षिप्त विवरण मिलता है, उनकी वीरता का ये अच्छा परिचय कराते हैं। गीत भी इतिहास में सहायक अवश्य होते हैं। राजाओं, सरदारों, राज्याधिकारियों, चारणों, भाटों, मोतीसरों आदि के यहाँ इन गीतों के बड़े बड़े संग्रह मिलते हैं। कहीं कहीं तो एक स्थान ही में दो हजार तक गीत देखे गये। इनमें से अधिकतर वीररसपूर्ण होने के कारण राजपूताने में ये बड़े उत्साह के साथ पढ़े और सुने जाते थे। इन गीतों में से कुछ, अधिक प्राचीन भी हैं, परन्तु कई एक के बनानेवालों के समय निश्चित न होने से उनमें से कई गीतों के रचना-काल का ठीक-ठीक निश्चय नहीं हो सकता। गीतों की तरह डिंगल भाषा के पुराने दोहे, छप्पय आदि बहुत

मिलते हैं। वे भी बहुधा वीररसपूर्ण हैं और इतिहास के लिए गीतों के समान ही उपयोगी हैं।" ❀

इस पुस्तक में छप्पय और गीतों के रूप में प्रचलित कुछ जनश्रुतियों का उल्लेख अवश्य हुआ है किन्तु अधिकांश प्रवाद दोहात्मक हैं। इसका मुख्य कारण है कि दोहा आसानी से याद हो जाता है तथा राजस्थानी बातों व ख्यातों में भी बीच बीच में अनेक दोहे मिलते हैं।

एक बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है। पुस्तक का शीर्षक 'राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद' रखा गया है किन्तु कुछ ऐसे भी प्रवाद इसमें आगये हैं जिनका सीधा संबन्ध राजस्थान से न होकर गुजरात अथवा सिन्ध आदि भारत के इतर प्रान्तों से है। प्रवादात्मक पद्यों के डिंगल भाषा में निर्मित होने तथा राजस्थान में अत्यधिक प्रचलित होने के कारण ये प्रवाद भी सहज ही इस पुस्तक में स्थान पा गये हैं। यह भी संभव हो सकता है कि किसी किसी प्रवाद में ऐतिहासिक तथ्य उतना न हो अथवा कोई प्रवाद ऐतिहासिक घटना के प्रतिकूल ही पड़ता हो किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से ये प्रवाद महत्वपूर्ण हैं और लिपिबद्ध करने के योग्य हैं- सम्भवतः इस विषय में दो मत न होंगे। प्रवादों के संग्रह करते समय मैं ऐसे लोगों के भी सम्पर्क में आया हूँ जिन्होंने कभी 'कागद स्याही को छुआ तक नहीं और कलम हाथ में पकड़ी

❀ राजपूताने का इतिहास (पहली जिल्द पृ० २६)

नहीं' किन्तु फिर भी जो धड़ल्ले से दोहों पर दोहे सुनाते जाते थे और सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते चले जाते थे। इन कहावती ऐतिहासिक दोहों के कारण भी इतिहास की घटनाओं का स्मरण रख लेना बड़ा आसान हो जाता है। दोहों द्वारा अशिक्षित जनता भी इस प्रकार इतिहास का ज्ञान प्राप्त कर लेती है। राजस्थान की यह ऐतिहासिक दोहा-पद्धति भी निराली ही है।

इन प्रवादों का विषयानुसार वैज्ञानिक वर्गीकरण हो सकता था किन्तु वैज्ञानिकता की ओर मेरा लक्ष्य न होने से ऐसा न हो सका; राजस्थान के समुज्ज्वल आदर्शों से परिचित कराना भर ही मेरा ध्येय रहा है। इस प्रसंग में एक बात का उल्लेख कर देना आवश्यक जान पड़ता है। एक प्रसिद्ध दोहे में कहा गया है—

> पुत्रो जाये कवण गुण, अवगुण कवण मुयेण।
> जे बप्पी की भूंहड़ी, चांपीजै अवरेण॥

अर्थात् यदि बाप-दादों की भूमि पर दूसरों का अधिकार हो गया तो पुत्र उत्पन्न होने से क्या लाभ हुआ? और, यदि वह मर ही गया तो क्या हानि हुई? इस प्रकार की उक्तियों में स्वातन्त्र्य-रक्षा में ही पुत्र-जन्म की सार्थकता मानी गई है किन्तु दूसरों की भूमि को अकारण हड़पना, आततायी बन कर निर्बल को पीड़ा पहुँचाना राजस्थानी संस्कृति का कभी आदर्श

नहीं रहा। राजस्थान के क्षत्रियों की शरणागत-रक्षा का आदर्श तो इतने गजब का था कि शरण में आने पर वे मुसलमानों की प्राण-पण से रक्षा किया करते थे। अलाउद्दीन के विरुद्ध हमीर ने जिसे शरण दी थी वह मुसलमान ही था जिसकी रक्षा में राणा ने अपने प्राण ही दे दिये। मुझे आशा है कि इस पुस्तक में संगृहीत प्रवादों से पाठकों के मन में भव्य भावनाओं का संचार होगा। यदि प्रवादों के इस प्रथम शतक का स्वागत हुआ तो लेखक अनेक ऐसे शतक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकेगा क्योंकि राजस्थान में इस तरह के असंख्य प्रवाद लोगों की जबान पर हैं जिनका प्रकाशन अनेक दृष्टियों से वांछनीय है। इस प्रांत का सांस्कृतिक इतिहास तो इन्हीं प्रवादों में सुरक्षित है।

श्री नागरमल सहल एम० ए० से मुझे पिछले कुछ वर्षों से निरन्तर ही साहित्यिक कार्यों के लिए प्रेरणा मिलती रही है। इस पुस्तक के प्रूफ-संशोधन का कार्य भी उन्होंने ही किया है किन्तु उन पर मेरा हक है जिसके कारण धन्यवाद की अपेक्षा नहीं रह जाती।

बंगाल हिन्दी मण्डल द्वारा पुरस्कृत मेरी 'राजस्थानी कहावतें' तथा प्रस्तुत पुस्तक के नाम मात्र से ही स्वर्गस्थ पितृदेव का रह रह कर स्मरण हो आता है। स्वयं घूम घूम कर मेरे लिए वे लोकोक्तियाँ और प्रवाद इकट्ठे किया करते थे और बहुधा पूछते रहते—तुम्हारी पुस्तक में अमुक लोकोक्ति का समावेश हुआ या नहीं ? उनके जीते जी उक्त दोनों पुस्तकें प्रकाशित हो जातीं तो वे बड़े प्रसन्न होते किन्तु विधि का विधान कुछ और ही था। करीब दस दिन की बीमारी के बाद ही वे अकस्मात् उस लोक को चल बसे जहाँ से लौट कर कोई नहीं आता। मृत्यु की घड़ियाँ गिनते हुए भी अपनी बीमारी की कभी चर्चा उन्होंने दूसरों से नहीं की, हमेशा दूसरों के दुख-दर्द की ही फिक्र में करते रहे। हाथ पैर हिलाने डुलाने तक की शक्ति न होते हुए भी एक दिन मुझसे कहने लगे—तुम्हारे खेलने-कूदने के दिन हैं, आसपास के इस बन्द कमरे में तुम क्यों बैठे हो ? मेरी ओर से निश्चिन्त होकर अपने कार्य में लग जाओ। बीमारी के पहले काम करने के लिए डाक्टरों ने जब उनको मना किया तो बोले—क्या तुम लोगों की यह इच्छा है कि जल्दी मैं बीमार हो

तरह खाट पकड़ लूँ ? उनके जीते जी कभी ऐसा मौक़ा नहीं आया जब घर पर गाय न रही हो और गाय की ऐसी सेवा करने वाला व्यक्ति मैंने अपने जीवन में दूसरा नहीं देखा; बीमारी की हालत में भी वे गाय को न भूले । साहस की वे मूर्ति थे; कर्मशीलता ही उनके जीवन का ध्येय था । उनकी पावन-स्मृति में प्रवादों संबन्धी यह पुस्तक लिखने की मैं सोच ही रहा था कि कलकत्ते से श्रीयुत सीतारामजी सेकसरिया का पत्र मुझे मिला जिसमें लिखा था "रामकुमारजी से मेरा बहुत पुराना संबन्ध था, इसलिए उनकी कई स्मृतियाँ याद आती हैं ।" श्री सेकसरियाजी ने यह भी इच्छा प्रकट की कि मैं अपने पितृदेव संबन्धी कुछ संस्मरण लिखूँ । संस्मरण तो मैं नहीं लिख पाया किन्तु सेकसरियाजी के पत्र से प्रवादों संबन्धी यह पुस्तक लिखने की इच्छा और भी बलवती हो गई । पितृदेव के जीवन-काल में ही 'वीणा' तथा 'विशाल भारत' आदि अनेक पत्रों में प्रवादों संबन्धी मेरी लेखमाला छपने लगी थी । एक दिन अस्पताल में उनकी चारपाई के निकट बैठा हुआ मैं प्रवादों पर 'वीणा' के लिए एक लेख लिख रहा था तो वे बोले—तुम्हारी यह लिखने की आदत बड़ी अच्छी है । आखिर बताओ तो सही—तुम यह क्या लिख रहे हो ? 'राजस्थान के बिसहर'

संबन्धी लेख मैंने पूरा करके जब उनको सुनाया तो वे बड़े प्रसन्न हुए थे । पूज्य पितः ! इन प्रवादों को पुस्तकाकार प्रकाशित होते देख क्या आपकी स्वर्गस्थ आत्मा को कुछ तृप्ति न मिलेगी ?

तुम दयालु थे दे गये पर-हित जीवन-दान
जीवन था नित प्रिय तुम्हें, भरा मान-सम्मान ।

पिलानी मार्च १९४७ [कन्हैयालाल सहल

राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद

(१)

राजस्थान में ऐसे बहुत-से राजा हुए हैं, जो स्वयं कविता करते और राज्याश्रित अनेक चारणों को बहुत-सा दान कर काव्य-रचना के लिए प्रोत्साहित करते थे। बीकानेर के महाराज रायसिंहजी ऐसे ही राजाओं में से थे। दानी तो ये इतने बड़े थे कि जिसके कारण किसी-किसीने इनको राजस्थान के कर्ण की उपाधि से विभूषित किया है। सं० १६२० से ये अकबर बादशाह के पास रहने लगे थे। युद्धार्थ अकबरने जब उनको दक्षिणकी ओर भेज दिया, तो वहां संयोगसे एक फोग का पौधा महाराजको दृष्टिगोचर हुआ। पौधेको देखते ही आप तुरन्त घोड़े से उतर पड़े और उस पौधेसे बड़े प्रेम और भावावेश के साथ गले लगकर मिले। महाराज का देश-प्रेम निम्नलिखित दोहे के रूप में फूट पड़ा:—

तूं सै देसी रूँखड़ा म्हे परदेसी लोग;
म्हांने अकबर तेड़िया[1] तू को[2] आयो फोग ॥

हे पौधे, तू देशी है; हम तो परदेशी लोग हैं। हमें तो इधर अकबरने बुला भेजा; किन्तु हे फोग, तू यहाँ क्योंकर आ पहुँचा?
एक जम्भू-निवासीके सम्बन्धमें भी कहा जाता है कि जब वह

१—बुला भेजा। २-क्योंकर, कैसे?

नौकरीकी तलाशमें परदेश निकला, तो वहाँ जम्मूके एक पौधेको देखकर उससे लिपट गया और आँखोंमें आँसू भरकर कहने लगा—'मांडे गराइएँ दिए बूटिए! मैं नूं तो किसमत खींचि ले आई तैनूं ऐत्थे कौण खिंचि ले आया?' अर्थात् हे मेरे गांवके बूटिए (पौधे), मुझे तो यहाँ क़िस्मत खींच लाई, तुझे यहां कौन खींच लाया? वह स्नेह-दशा भी सचमुच धन्य है, जिसमें पेड़-पौधे भी अपने आत्मीय-से जान पड़ते हैं।

(२)

ऊपर जिन महाराज रायसिंहजी का वर्णन किया गया है, उन्हींके छोटे भाई महाराज पृथ्वीराज सुप्रसिद्ध 'पीथल' कवि थे, जिनकी 'बेलि क्रिसन रुकमणी री' डिंगल का सर्वोत्तम काव्य समझा जाता है। इनकी रानी चाँपादेको भी कवि-हृदय मिला था। कहते हैं कि एक बार महाराज पृथ्वीराज अपनी दाढ़ी सँवार रहे थे। दाढ़ी में उनको एक सफेद बाल दिखाई पड़ा, जो उसे उखाड़कर फेंक दिया। पीछेसे रानी चाँपादेने महाराजको ऐसा करते देख लिया। महाराज मुस्कराकर कवितामें ही अपनी खिन्नता कहने लगे:—

> [illegible] धोळा आविया, बहुली लागी खोड़।
> पूरे जोबन पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड़॥
> [illegible] छूटियां, बहुली लागी खोड़।
> [illegible] ऊभी मुक्ख मरोड़॥

—पीथल कहता है कि सफ़ेद बाल उग आए, यह तो बड़ी खोड़ (खोट, खराबी, त्रुटि) लग गई। बड़ा बुरा हुआ कि पूर्ण यौवन को प्राप्त पद्मिनी-सी मोहिनी प्रिया खड़ी हुई मेरी ओर देखकर मुख मरोड़ रही है। पीथल कहता है कि दाढ़ी के बाल पकने लगे, बड़ा-बुरा हुआ, जिसके कारण मदोन्मत्त हाथीके समान प्रिया (मरवण) खड़ी-खड़ी मुख मरोड़ रही है। यह सुनकर चाँपादे महाराज़का भाव ताड़ गई और उनकी आत्म-ग्लानिके भावको दूर करती हुई अपने पतिके सन्तोषार्थ कहने लगीः—

प्यारी कहे पीथल सुणो, धौलां दिस मत जोय।
नराँ नाहराँ डिगमराँ, पाक्यां ही रस होय॥

—प्यारी कहती है कि हे पीथल ! सुनो, सफ़ेद बालोंकी ओर देखो। मर्दों, सिंहों और दिगम्बरों (योगियों) में रस-परिपाक अवस्था पकनेपर ही होता है।

गोड़ कछाहा राठवड़, गोखाँ जोख करन्त ।
कहजो खानाखानने, वनचर हुआ फिरन्त ॥
तँवराँ सूँ दिल्ली गई, राठोड़ां कनवज्ज ।
अमर पयँ पै खानने, वो दिन दीसै अज्ज ॥

—गौड़, कछवाहा और राठौड़ महलोंके झरोखोंमें मौज उड़ा रहे हैं। खानखानासे कहना कि हम जंगलोंमें भटक रहे हैं। तँवर राजपूतोंसे दिल्ली गई; राठोड़ोंसे कन्नौज गया। अमरसिंह के लिए भी वह दिन आज दिखाई दे रहा है। इस सन्देशके उत्तरमें खानखाना ने नीचे लिखा हुआ दोहा लिख भेजा:—

धर रहसी रहसी धरम, खप जासी खुरसाण ।
अमर विसम्भर ऊपरां, राखो नहचो राण ॥

—धरती और धर्म रह जायँगे, खुरासानवाले (मुगल) खप जायँगे। हे राणा अमरसिंह, तुम विश्वम्भर (भगवान) पर भरोसा रखो। राज्य तो आते-जाते रहते हैं, धरती और धर्म ही हमेशा बने रहेंगे। खानखानाके उत्तर की ये मार्मिक पंक्तियाँ आज भी अवसर पड़नेपर राजस्थानमें कहावतकी भाँति प्रयुक्त होती हैं। इसे एक प्रकारका कहावती दोहा ही समझिए। इस उत्तरसे महाराणाका उत्साह बढ़ गया और वे निरन्तर लड़ाइयाँ लड़ते रहे।

(५)

जयपुरके 'महाराज' हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवियोंमें गिने जाते [illegible]
[illegible] जयपुरके [illegible]सिंहजी का।

वर्णन किया है। कहा जाता है कि एक वार जोधपुरके राजा मानसिंह और जयपुरके महाराज जगतसिंहकी उपस्थितिमें पद्माकर और बाँकीदास चारणको अपने-अपने काव्य कौशल का परिचय देनेके लिए कहा गया। बाँकीदासने जोधपुर-नरेशकी प्रशस्तिमें नीचे लिखा दोहा कहा:—

ब्रज देसाँ चन्दन वड़ाँ, मेरु पहाड़ाँ मौड़।
गरुड़ खगाँ लंका गढ़ाँ, राजकुलाँ राठौड़॥

—देशों में ब्रज, दरख्तोंमें चन्दन, पहाड़ोंमें सुमेरु, पक्षियोंमें गरुड़, गढ़ों(क़िलों)में लंका और राजकुलोंमें राठौर शिरोमणि हैं।

इसपर पद्माकरने निम्नलिखित दोहा सुनाया:—

ब्रज वसावन गिरि नख धरण, चन्दन बास सुभास।
लंका लेवन गरुड़ चढ़न, रजधारी रघुनाथ॥

—रघुनाथने ब्रजको बसाया। उन्होंने एक-पर्वत (गोवर्धन) को अपनी अँगुलीपर धारण किया, चन्दनका लेप किया, लंकापर विजय प्राप्त की और गरुड़पर सवारी की। विष्णुके अवतार समझे जानेके कारण राम, कृष्ण और विष्णुमें भी किसी प्रकार का अन्तर नहीं समझा जाता।

इन दोनों दोहोंमें 'पद्माकर' के दोहेकी ही श्रेष्ठता स्वीकार की ई। बाँकीदासने तो संसारकी उत्कृष्ट वस्तुओंका उल्लेख करते ए राठौड़-राजवंशको सर्वश्रेष्ठ ठहराया; किन्तु पद्माकरकी युक्ति

वंशके राजाने अपने पिता अजीतसिंहजीको मारा है। यह सुन कर जयपुर-महाराज तो मुँहमें रूमाल डालकर हँसने लगे; किन्तु अभयसिंहजीने कहा—'बारहठजी, पधारिए, मैं आपका मुँह भी नहीं देखना चाहता।'

करणीदानने भी उपेक्षासे जवाब दिया—'मुझमें गुण हुआ, तो मेरा मुँह देखना ही पड़ेगा।'

आगे चलकर करणीदानने जब 'सूरज-प्रकाश' की रचना की, तो जो इस काव्यको सुनता, वही फड़क उठता। कनातके पीछेसे अभयसिंहजीने भी उसे सुना; किन्तु जिस स्थानपर सरबलन्दखान और अभयसिंहजीकी लड़ाईका वर्णन आया, महाराज मारे ओजके उछल पड़े और कनात के पर्देको उठा कर करणीदानको गले लगा लिया। कविराजाको लाखपसाव, आलास ग्राम और ताजीम प्रदान की। उन्हें पहुँचाने गए, तो स्वयं घोड़ेपर सवार हुए और कविराजाको हाथीपर चढ़ाया—

> अस चढ़ियो राजा अभो, कवि चाढ़े गजराज।
> पोहर एक जलेबमें मोहर हले महराज॥

कविराजाकी निर्भीकताको सराहें या महाराज अभयसिंहजी की गुणग्राहकताको ?

(६)

स्वामिभक्ति राजस्थान को प्रमुख विशेषता रही है। कहा जाता है कि एक बार युद्ध में जब महाराज पृथ्वीराज मूर्च्छित

हुए तो गिद्धों ने आकर उनके नेत्रों का नाश करना चाहा। यह देख कर वीर शिरोमणि संयमराय ने जो स्वयं घायल होकर युद्ध-क्षेत्र में पड़े थे अपना मांस काट काट कर गिद्धों की ओर फेंका जिससे गिद्ध महाराज पृथ्वीराज के नेत्रों से हट कर फेंके जाते हुए मांस की ओर लपक पड़े। इस प्रकार महाराज पृथ्वीराज के नेत्रों की रक्षा वीरवर संयमराय ने अपने प्राणों की आहुति देकर की। इस प्रसंग में निम्नलिखित दोहा अत्यंत प्रसिद्ध है—

गीधन कों पल भक्ष दिये, नृप के नैन बचाय।
सैंदही बैकुण्ठ में, गये जु संयमराय॥

अर्थात् पानी, पवन, पृथ्वी, आकाश और हिन्दू धर्म को साक्षीस्वरूप सामने रख कर मैं अपने पिता धांधल की शपथ खाकर कहता हूँ कि जिस दिन तुम्हारी गायें घिरेंगी, उस दिन उनके बदले मैं अपना यह मस्तक दे दूँगा। और अक्षरशः सच्ची कर दिखाई उस वीर ने अपनी इस भीष्म प्रतिज्ञा को।

ऊमरकोट में पाणिग्रहण के अवसर पर जब पाबूजी भाँवर फिर रहे थे, उनको संकेत मिला कि देवलजी की गायें घेर ली गई हैं। खबर मिलते ही राजकन्या का हाथ और चँवरी छोड़कर पाबूजी कालमी घोड़ी पर सवार होकर युद्धार्थ निकल पड़े—

"नेह निज रीझ री वात चित ना धरी, प्रेम गवरी तणो नाहिं पायो।
राजकँवरी जिका चढि चँवरी रही, आप भँवरी तणी पीठ आयो॥"

इस अवसर पर पाबूजी की सालियाँ और उनकी पत्नी ने जो मर्मभरी विनय की उसका दर्द तो आज भी पुराना नहीं पड़ा है—

जेज हूँत कर जीण, तसवीरां लिखल्यां तुरत।
वल न इसड़ो बींद ऊमरकोट न आवसी॥

अर्थात् हे वीर! जरा देर से घोड़ी पर जीन कसो जिससे आपकी तसवीर उतारलें। हमारे इस ऊमरकोट में ऐसा वर फिर कभी नहीं आयेगा।

खीचियों और पाबूजी में घमासान युद्ध हुआ। पाबूजी ने सारी गायें छीन कर चारणों को देदीं। आप भी बड़ी वीरता-पूर्वक लड़ते हुए इस युद्ध में काम आये।

प्रतिज्ञापालन का ऐसा दिव्य और भव्य आदर्श और कहाँ मिलेगा?

(८)

मरदो माया माणलो लाखो कहै सुपट्ट।
घणा दिहाड़ा जावसी के सत्ता के अट्ठ॥

अर्थात् हे मनुष्यो ! अधिक से अधिक सात या आठ दिन के लिये ही तो यह माया मिली है—क्यों नहीं इसका उपभोग कर लेते ? यह लाखा की स्पष्ट उक्ति है। इस पर लाखा की पत्नी कहती है—

फूलाणी फेरो घणो, सत्ता सूं अठ दूर।
रोते देख्या मुलकता, वे नहिं उगते सूर॥

फूलाणी कहती है कि स्वामिन् ! सात और आठ में तो बहुत अन्तर है। जिन्हें हमने रात्रि में हँसते हुए देखा था, वे प्रातः काल होते ही उस लोक को चल देते हैं जहाँ से लौट कर कोई नहीं आता। फूलाणी की पुत्री ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा—

लाखो भूल्यो लखपती, मा भी भूली जोय।
आंखां तणे फरूकड़े, क्या जाणू क्या होय?

अर्थात् हे माता-पिता दोनों ने ही अच्छी तरह विचार कर बात नहीं कही। सच तो यह है कि आँखों के फड़कने में जितना समय लगता है उसमें ही न जाने क्या का क्या हो जाय ?

दासी ने तो जो यह सब सुन रही थी और भी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते हुए कहा—

लाखो अन्धो धी आँधी, आँध लाखारी जोय।
सांस बटाऊ पावणो, आवे न आवण होय॥

लाखा, उसकी स्त्री, उसकी लड़की सब इस प्रकार बातें करते हैं जैसे उन्होंने दुनिया को देखा ही न हो। आँखों के फड़कने में भी तो कुछ समय लगता है। साँस के जाने में समय कैसा? अरे, यह श्वास तो बटाऊ (पथिक) के समान है, एक बार आकर फिर आये न आये, इसका कौन भरोसा? श्वास और उच्छ्वास के जो बीच का समय है उसमें ही न जाने कितनी बड़ी घटना घटित हो जाय, जीव महाप्रयाण के लिए निकल पड़े।

(६)

राजस्थान के इन वीरों ने जीवन की क्षणभंगुरता के इस रहस्य को भलीभाँति हृदयंगम किया था। तभी तो प्राणों को हथेली पर रख कर वे आततायी का दमन करने के लिए युद्धक्षेत्र में प्राणों का व्यापार किया करते यहाँ तो मृत्यु को भी त्यौहार के रूप में माना जाता था। किसी अच्छे निमित्त को लेकर अगर प्राण त्याग किये जायें तो इससे बढ़कर [illegible] ही। में और क्या होगा?

आततायियों का दमन करने के लिए राजपूत योद्धा के पास जब भी कोई सहायता के लिये पहुँचता तो वह बिना किसी हिचकिचाहट के अपने प्राणों का बलिदान करके भी उसकी

सहायता करता। क्षत्रिय शब्द की व्युत्पत्ति करते हुये कालिदास ने सच ही कहा है 'क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः' जीते जी जिसके सामने आर्त की वाणी सुनाई पड़ती रहे वह कैसा क्षत्रिय !

इतिहास में प्रसिद्ध है कि लल्ला नामक पठान ने सोलंकियों से 'टोडा' छीन लिया था। महाराणा श्री रायमल्लजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री पृथ्वीराजजी अत्यन्त यशस्वी और प्रतापी हुये। ये इस समाचार से कुपित होकर अकस्मात् टोडे जा पहुँचे थे और टोडा विजय करके इन्होंने सोलंकियों को दे दिया था। इस आकस्मिकता के कारण लोग इस बात का अनुमान भी न लगा सके कि क्योंकर महाराज इतना शीघ्र टोडा पहुँच सके। कहते हैं उसी दिन से यह 'उडणा पृथ्वीराज' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। उनकी वीरता का तो इतना आतंक छा गया कि निम्नलिखित पद्य ही कहावत के रूप में प्रचलित हो गया—

भाग लल्ला ! प्रथीराज आयो।
सिंह कै साँथरै स्याल ब्यायो ॥

अर्थात् हे लल्ला ! पृथ्वीराज आगया, अब यदि अपनी खैर चाहता है तो भग चल। सिंह की गुफा में गीदड़ ने बच्चा दिया है, कैसे निर्वाह होगा ?

(१०)

वाल्मीकि रामायण में कहा गया है कि जब सीता ने दुष्ट भावना वाले रावण को अपनी पवित्रता के तेज से दूर हटा दिया

तो राक्षसियों ने आकर उन्हें घेर लिया और कहा—तुम बड़ी भोली हो, अभी दुनियाँ के व्यवहारों को नहीं जानती हो। नहीं तो जो कुछ तुम्हें दिया जा रहा है उसको तुम यों ठुकरा न देतीं। इस पर भगवती सीता ने उत्तर दिया—बहनो, तुम्हारा यह नगर सुन्दर है, यहाँ के ये भवन भव्य हैं और यहाँ सभ्यता के (संस्कृति के नहीं) सभी लक्षण मौजूद हैं। लेकिन क्या यहाँ दो या तीन व्यक्ति भी नहीं हैं जो पाप को पाप समझ कर रावण से सच्ची बात कह सकें?"

राजस्थान का चारण भी सच्ची बात कहने से कभी नहीं चूकता था। प्रवाद है कि अपने पिता के घातक जोधाणनाथ बखतसिंहजी अपने अश्व को 'बाप बाप' कह कर थाबड़ रहे थे। एक चारण ने यह सुन कर ताना मारा—

बापो मत कह बखतसी, कांपत है केकाण।
एक बार बापो कहे, पवंग तजैलो पाण॥

अर्थात हे बखतसिंह! अश्व को 'बापो बापो' मत कहो, यह सुन कर घोड़ा काँप रहा है। एक बार बाप कह दोगे तो घोड़ा प्राण त्याग देगा क्योंकि तुम 'बापमार' जो ठहरे!

देश और धर्म की रक्षा के लिए प्राण त्याग करना राजस्थान के वीरों का परम पुनीत आदर्श रहा है। चारपाई पर प्राण देने की अपेक्षा युद्ध में धराशायी होना यहाँ सदा श्रेष्ठ समझा गया। राजस्थानी वीर मृत्यु से कभी नहीं डरे, मृत्यु से वे हमेशा खिल

नदी वहंतो जाय, साद ज... सांगारिए दियो ।
कहजो म्हारी माय, कवि ने ... कामली ॥

[अर्थात् नदी में बहते हुए सांगा ने अपने साथियों को पुकार कर कहा—मेरी माँ से कहना कि वा... कवि, श्री ईश्वरदास जी को कम्बल देना न भूल जाय !] मृत्यु के समय भी जो अपनी बात को न भूला, ऐसे सांगा को उसकी मृत्यु के बाद हम कैसे भूल जायँ ? राजस्थान के कवियों ने सांगा को अपने काव्य द्वारा अमरत्व प्रदान किया है। सांगा के औदार्य के सम्बन्ध में कहे हुए निम्नलिखित कवित्त को भी हम सहज ही नहीं भूल सकते—

छल मे ठिगाय गयो दानव विचारो बलि
तीन पैंड नाप लियो हरि त्रिभुवन को
सुयोधन कोश पै अपेल जिहि आज्ञा रही
केशव बखानै कैसे कौरव करन को ?
राम महाराज की वदान्यता में राजनीति
भेद लहिबे नैं लंक दीन्हीं विभीषण को
कामली न भूल्यो मझधार में बहत जान
कहेंगे उदार सांगा गौड़ से सुजन को ॥ *

---

* यह कवित्त लेखक को श्री शीशदानजी चारण की कृपा से प्राप्त हुआ था।

जोधपुर के राज्याश्रित कवि थे। जोधाणनाथ राव मालदेव ने 'बाघा-बाघा' की रट छुड़वाने के लिए लाख कोशिश की किन्तु सब निष्फल। अन्त में उन्होंने एक उपाय सोचा। बारहठजी से कहा कि यदि आप रात्रि के चार पहर तक बाघाजी की रट लगाना बन्द कर दें तो मैं रात्रि के प्रत्येक पहर के हिसाब से आपको चार लाख पसाव दूँगा। बारहठजी के पुत्र ने उनसे बड़ी अनुनय विनय की किन्तु वेदना का उमड़ता हुआ प्रवाह उनके रोके न रुक सका और उनके मुख से हठात् निकल पड़ा—

बाघा आव वलेह, धर कोटड़े तूं धणी।
जासी फूल झड़ेह, बास न जासी बाघड़ा॥

अर्थात् हे कोटड़े के स्वामी बाघजी! कोटड़े की धरती पर तू एक बार फिर आ। फूल झड़ जाने पर भी उनकी सुगन्ध नहीं जाती। तेरे चले जाने पर भी तेरी प्रीति महक रही है।

बारहठ जी से फिर कहा गया—अभी तो तीन पहर रात और बाकी है। अब भी यदि आप बाघाजी की रट छोड़ दें तब भी चारों लाख पसाव आपको दे दिये जायेंगे। किन्तु दूसरा पहर भी बीतने न पाया। बारहठजी के धैर्य का बाँध निम्नलिखित दोहे के रूप में टूट पड़ा—

क्यूं कुम्हलायो फूलड़ा, गलती सांभल जोग।
विरहन बनी है बींटियो, बाघा तणो विजोग॥

हे मुर्गे ! व्याकुल होकर इस अर्द्ध रात्रि के समय तू भी क्यों
रहा है ? क्या तुझे भी बाघा के वियोग ने घेर लिया है ?)

सरे पहर भी बारहठजी अपने भावावेश को न रोक सके—

बाघाजी बिन कोटड़ौ, लागै मो अहड़ोह ।
जांनी घरै सिधावियाँ जांणै मांडवड़ोह ॥

र्थात बाघाजी के बिना मुझे कोटड़ा इस प्रकार (सूना-
लगता है जिस प्रकार बरात के चले जाने पर विवाह
ण्डप !

ाशाजी से फिर कहा गया कि अब भी एक प्रहर रात्रि
। यदि बाघाजी का नाम आप न लें तो चारों लाख पसाव
ी आपको दिये जा सकते हैं किन्तु स्वामिभक्त आशाजी के
निकल पड़ा—

चींवण चाल वियांह, खड़ मांझी खंखेरियां ।
रांणा ! राख थयांह, बीसरसों जद बाव ने ॥

र्गात हे राणा ! बाघाजी को तो मैं चिता के लकड़ों में भस्म
ने के बाद ही भूल सकता हूँ ।

देखिये श्री झवेरचन्द मेघाणी द्वारा व्याख्यात चारणों
ारणी साहित्य' पृ० १०७-१०८]

ारहठ जी की इस स्वामिभक्ति को देख कर राणा बहुत
हुए और उन्होंने उनके पुत्र को चारों लाख पसाव दे

दिये । बारहठ जी को भी अपने पास रख लिया और इस बात की पूरी कोशिश की कि उनको किसी प्रकार का कष्ट न हो । एक दिन स्नान के बाद भूल से बारहठजी ने महाराणा के कपड़े पहिन लिये । जब महाराणा ने बारहठ जी को स्मरण दिलाया तो उनके मुख से बरबस ये शब्द निकल पड़े—

की कह की कह की करों, केहा करों बखाण ।
थारो म्हारो नह कियो हे बाबा अहनाण ॥

अर्थात् मैं क्या कहूँ और किस प्रकार बाबाजी का बखान करूँ ? यह चीज तेरी है, यह मेरी—बाबा इस प्रकार कभी नहीं कहता था ।

चालो मना रे कोटडे, पग दे पावड़ियांह ।
बाबा सूं बातां करां, गल दे बाहड़ियांह ॥

अर्थात् हे मन ! इस हौज की सीढ़ियों पर पैर रख कर कोटड़े को चल । वहाँ बाबा जी के गले में बाँह डाल कर बातें करेंगे । अन्त में बाबा बाबा की रट लगाते हुए ही बारहठजी ने अपने प्राण त्याग दिये । स्वामिभक्ति के आदर्श रूप में बाबा जी का नाम प्रायः लिया जाता है ।

[ऊपर के पद्यों से ज्ञान पड़ता है कि बारहठ जी कभी उदयपुर पहुँचे होंगे और वहाँ के राणा ने उनको चार लाख पसाव देने की बात कही होगी किन्तु मेवाड़ी जी की उस पुस्तक

कहा गया है कि जोधाणनाथ ने ही बाहरठजी को चार लाख साव देने का विचार किया था यद्यपि इससे किंवदन्ती के रूप प्रचलित पद्यों की संगति नहीं बैठती ।]

(१३)

अकबर बादशाह का दरबार लगा हुआ था, बड़े बड़े सरदार उपस्थित थे। अकस्मात ही एक संदेशवाहक ने महाराणा प्रताप की मृत्यु का समाचार बादशाह के कानों तक पहुँचवाया। सुनते ही बादशाह खिन्न और उदास हो उठा। शत्रु की मृत्यु पर बादशाह को प्रसन्न होना चाहिए था, न कि उदास—दरबारीगण इस रहस्य को न समझ सके। इस समय राजस्थान के निर्भीक कवि दुरसा आढा ने निम्नलिखित छप्पय कहा जिसकी गूंज आज भी मंद नहीं हो पाई है—

अस लेगो अणदाग, पाघ लेगो अणनामी।
गो आग्डा गवड़ाय, जिको बहतो धुर बामी॥
नवरोजे नह गयो, न गो आतसां नवल्ली।
न गो झरोखां हेठ, जेठ दुनियाण दहल्ली॥
गहलोत राण जीती गयो, दसण मूंद रसना डसी।
नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत साह प्रताप सी॥

कवि का यह छप्पय राजस्थान के सुप्रसिद्ध पीछोलों (मरसियों) में से है। यदि अकबर के डर से महाराणा प्रताप की मृत्यु पर कोई मरसिया कहने वाला न होता तो संपूर्ण

राजस्थान के लिए यह लज्जा की बात होती—दुरसा आढा ने राजस्थान की लाज रखली। एक ही छप्पय में महाराणा के अनुपम शौर्य और बादशाह की मनोदशा का चित्रण कर दिया! महाराणा ने अपने घोड़ों के दाग़ नहीं लगने दिया। अकबर के शासन काल में राजकीय नियमानुसार उनके घोड़ों के पुट्ठे पर दाग़ लगाया जाता था जो बादशाही फौजों में नौकरी देते थे। अपनी पाग (पगड़ी) को किसी के सामने नहीं झुकाया, जो शत्रु के सामने कभी नतमस्तक न हुआ। जो आडा गवाता हुआ चला गया, जो हिन्दुस्तान के भार की गाड़ी को बांई तरफ़ से खींचने वाला था; "नौरोज़" के जलसे में कभी नहीं गया, नये आतश अर्थात् शाही डेरों में नहीं गया और ऐसे झरोखे के नीचे नहीं आया जिसका रोब दुनिया पर ग़ालिब था। इस तरह का गहलोत राणा प्रतापसिंह विजय के साथ चला गया जिससे बादशाह ने ज़बान को दांतों में दबाया और निश्वास लेकर आंखों में पानी भर लिया। ऐ प्रतापसिंह! तेरे मरने पर ऐसा हुआ।

[राजपूतों में ऐसी शायरी करने की अब तक प्रथा चली आती है जिसमें अत्याचार करने वाले शत्रु पर ताने कसे जाते हैं और अपने जातीय वीर की प्रशंसा की जाती है। इस तरह के सोरठे प्रतापसिंह के सामने ढोली गाया करते थे जिसमें महाराणा के प्रतिपक्षी अकबर को आड़े हाथों लिया जाता था।

उदाहरणार्थ —

अकबर घोर अंधार, ऊंघाणा हिन्दू अवर।
जागे जग दातार, पोहरे राणा प्रताप सी॥

इस प्रकार के गीत 'आडा' कहलाते हैं]।

अकबर की खिन्नता का कारण यह था कि वह राणा पर विजय प्राप्त न कर सका, महाराणा यश, प्रताप और विजय का सौरभ विकीर्ण करता हुआ स्वर्गलोक जा पहुँचा। बादशाह की विशाल वाहिनी भी महाराणा को अपने अधीन न कर सकी- यह भी अकबर जैसे बादशाह के लिए दुःख और पश्चात्ताप का विषय था। किन्तु प्रताप तो प्रताप ही थे। ऐसे महापुरुष अजेय रहने के लिए ही उत्पन्न होते है। कवि ने अपना धर्म निभाया— निर्भीकता पूर्वक महाराणा की प्रशंसा में पीछोला कहा; अकबर ने भी कवि की गुण ग्राहकता का परिचय देते हुए कहा—खूब कहा कविराज! धन्य हो तुम। मेरे मन की बात ही तुमने कह सुनाई।

(१४)

जोधपुर के राव मालदेव के आदेशानुसार ईश्वरदास नामक चारण ने कहानी कहना प्रारम्भ किया। कहानी के बीच में उसने यह कहावती दोहा पढ़ा—

मारवाड़ नर नीपजे नारी जैसलमेर
तुरी तो सिन्धां सांतरां करहल बीकानेर

अर्थात मर्द तो मारवाड़ में ही उत्पन्न होते हैं, स्त्रियां तो जैसलमेर की ही होती हैं, घोड़े तो सिन्ध के ही अच्छे होते हैं और ऊंट तो बीकानेर में ही पैदा होते हैं। यह सुन कर राव मालदेव कहने लगे-जैसलमेर की स्त्रियों की भली कही, हमारे यहाँ तो जैसलमेर की अन्यतम सुन्दरी उमादे रूठी बैठी है। चारण ने कहा-यह कौन बड़ी बात है, चलिये अभी मेल करादूँ। दोनों उमादे के महल की ओर चले। रावजी चलते चलते कहने लगे-बारहठजी आप चलते तो हैं किन्तु उमादे बोलने की नहीं।

चारणोचित वाणी में ईश्वरदास ने बड़े आत्मविश्वास के साथ ओजमयी वाणी में उत्तर दिया-आप क्या कहते हैं—मैं चारण हूं, चारण मरे हुए को भी बुलवा सकते हैं, वह तो जीवित है! रावजी ड्योढ़ी के पीछे बैठ गये और उमादे से पर्दे के भीतर से बातचीत का सिलसिला शुरू किया गया—

चारण ने कहा-बाईजी मुजरा, घणी खमा।

उमादे चुप। ईश्वरदास ने फिर कहा-बाईजीराज मैं मेरा मुजरा। उमादे फिर भी चुप। ड्योढ़ी के पीछे से राव मालदेव की धीमी आवाज "बारहठजी, मैं पहले ही कहता न था कि नहीं बोले तो यह बोले।" बारहठजी ने राव मालदेव की बात सुनी अनसुनी करदी और उमादे से कहा—

मैं आप ही के घराने का हूँ इसलिए बाईजी बाईजी कर रहा हूं और मुजरा मुजरा कहता हूं—नहीं तो तुम्हें और तुम

घराने को ऐसा लजाता कि याद रखतीं । उमादे अब भी चुप।
ईश्वरदास ने कहना शुरू किया—

आपके पूर्वजों में एक रावल दूदाजी थे । वे मुसलमानों के साथ युद्ध करते हुये वीर गति को प्राप्त हुए । उनकी रानी ने चारण हूँपाजी से अपने पतिदेव का सिर ला देने के लिए कहा ताकि वह सती हो जाय । हूँपाजी युद्धक्षेत्र में गये किन्तु वहाँ कटे हुये सिरों के ढेर में सिर पहचाना नहीं जाता था । तब हूँपाजी ने रावलजी की विरुदावली का बखान किया जिसे सुनकर सिर हँस पड़ा था । राजस्थान में अब तक यह दोहा प्रचलित है—

चारण हूँपे सेवियो साहब दुर्जन सल्ल ।
विरदाताँ सिर बोलियो गीतों दूहों गल्ल ॥

अर्थात् हूँपाजी ने अपने स्वामी दूदाजी की सेवा की थी। पनी प्रशंसा सुन कर सिर बोल उठा । यह बात गीतों और हों में प्रसिद्ध है । बाईजी ! तुम भी रावल दूदाजी के घराने की —तुम्हारे पूर्वज मर कर भी बोल उठते थे, तुम जीती भी नहीं लती। क्या तुम्हारे पूर्वजों का रक्त तुम्हारी धमनियों में नहीं ड़ता ?

उमादे जोश में आगई । बात बनाते हुए कहने लगी—मैं भी ही देखना चाहती थी कि चारण की वाणी में कितना बल होता है । कहो—क्या कहते हो, क्यों आये हो ?

मृत्यु से राज्य को बड़ी क्षति पहुँची। इस सम्बन्ध में यह
हा कहावत के रूप में प्रचलित हो गया है—

"नहिं पति बहुपति निबल पति, शिशु पति पतनी नार।
नरपुर की तो क्या चली, सुरपुर होत उजार॥"

अर्थात जहाँ स्त्री के पति न हो या बहुत से पति हों अथवा
पति निर्बल या छोटी अवस्था का हो, वहाँ इस मर्त्यलोक का तो
कहना ही क्या, स्वर्ग भी उजड़ जाता है।

(१६)

उदयपुर के महाराणा भीमसिंह की दानशीलता के सम्बन्ध
अनेक दन्तकथाएँ राजस्थान में प्रचलित हैं। कहा जाता है
एक बार महाराणा की ओर से मेवाड़ के चारणों को बहुत
कुछ पुरस्कार प्राप्त हुआ किन्तु संयोग से एक चारण को कुछ न
मिल सका जिससे दूसरे चारणों को उसे चिढ़ाने का मौका मिल
गया। उसने चारण बन्धुओं से कहा कि तुम लोगों ने तो
महाराणा की विरुदावली बखान कर पुरस्कार प्राप्त किये हैं, मैं
महाराणा की निन्दा करके पुरस्कार प्राप्त कर दिखला दूँगा
एक दिन जब महाराणा की सवारी कहीं जा रही थी तो उ
रण ने बड़े उच्च स्वर से चिल्ला कर कहा—

'भीमा तूं भाटोह, मोटा मगरां मांयलो'

अर्थात हे भीम ! तू किसी बड़े पर्वत का पत्थर है।
पर महाराणा के चोबदार आदि जब उसे डाँटने लगे तो महा

(२८)

कहते हैं कि बीरबल के देहान्त के बाद अकबर ने अपनी मार्मिक व्यथा को निम्नलिखित दोहे द्वारा प्रकट किया था—

पीथल सू मजलिस गई, तानसेन सूँ राग ।
रीझ बोल हँस खेलणो, गयो बीरबल साथ ॥

इस दोहे के 'पीथल' कवि थे बीकानेर के पृथ्वीराज राठ जिनकी 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' डिंगल का शृंगार है ।

(२६)

मिर्जा राजा जयसिंहजी के जीते जी औरंगजेब की र हिम्मत न थी कि वह हिन्दुओं के मंदिरों का ध्वंस कर देता जयसिंहजी ने ही जजिया कर लगाने का विरोध किया था किन्तु मिर्जा राजा की मृत्यु होते ही औरंगजेब ने मंदिरों को न करवाना प्रारम्भ कर दिया था। जोधपुरके महाराज जसवंतसिंहजी ने जयसिंहजी की मृत्यु का समाचार सुने बिना ही लक्षणों से ही अनुमान कर लिया था कि मिर्जा राजा अब नहीं रहे । उनका निम्नलिखित आह्वान कितना मार्मिक है:—

घंट न बाजै देहरां, शंक न मानै शाह ।
हेकरसां फिर आवज्यो, माहूरा जयशाह ॥

अर्थात् देवालयों में आज घंटे नहीं बज रहे हैं, औरंगजेब किसी का भय न मान कर मनमानी कर रहा है। हे माहू (महा-

सिंहजी) के पुत्र मिर्जा राजा जयसिंह ! एक बार तो फेर आओ ।

(३०)

अलाउद्दीन अपने जेनरल महिमशाह से रुष्ट हो गया था । बादशाह के रोष से अपनी रक्षा का कोई उपाय न देख कर महिमशाह रणथंभोर चला गया जहाँ के शासक राव हमीर चौहान ने उसे निर्भीकतापूर्वक शरण दे दी । बादशाह ने हमीर को लिखा कि वह पठान को अपने पास न रखे किन्तु हमीर ने जो उत्तर भिजवाया वह केवल राजस्थान में ही नहीं, समस्त भारतवर्ष में कहावत की भाँति समय समय पर प्रयुक्त होता है—

कर भरदी खुरसांण, गरदी इवराहम गहर ।
भरदी भगती वांण, करदी काया काच की ॥

हुमायूँ ने राखी के आधार पर चितौड़ की रानी को अपनी वहिन समझ बहादुरशाह के विरुद्ध जो लड़ाई लड़ी थी वह तो भारतीय इतिहास के पाठक भलीभाँति जानते ही हैं। शेरशाह को पूरी तरह से दवाये विना ही हुमायूँ हिन्दू वहिन की रक्षार्थ चल पड़ा था। ऐसा करने में उसे एक वार तो दिल्ली के सिंहासन से भी हाथ धोना पड़ा था।

(३२)

पजूनराय महाराज पृथ्वीराज के सामन्तों में से सबसे अधिक वीर थे। पृथ्वीराज जब संयोगिता को लेकर सरपट घोड़े को दौड़ाते चले जा रहे थे, जयचन्द की तरफ के योद्धा उनके पीछे लगे हुए थे। पजूनरायजी ने ही इन योद्धाओं का डट कर सामना किया और इन्हें रोके रखा। महाराज पृथ्वीराज तो सुरक्षित रूप से दिल्ली पहुँच गये किन्तु यह स्वामिभक्त योद्धा अपने चन्द साथियों के साथ वीरतापूर्वक लड़ता हुआ काम आया। पजूनराय की मृत्यु के बाद कवि चन्द के शब्दों में महाराज पृथ्वीराज ने जो मरसिया कहा उससे इस योद्धा का शौर्य रह रह कर स्मरण हो आता है—

आज राँड ढिल्लड़ी, आज ढूँढाड़ अनाथइ।
आज अदिन पृथिराज, आज साँवत बिन माथइ।

आज पर दल दल जोर, आज निज दल भ्रम भग्गे ।
आज मही विन कसम, आज मुरजाद उलंघे ॥

हिन्दवाण आज टूटी ढिली, अव तुरकाणी उच्छटिय ।
कूरम पजून मरता थकां, मनहु चाप गुण ट्रुट्टिय ॥

अर्थात् आज दिल्ली विधवा हो गई, आज ढूँढाड़ अनाथ हो गया । आज पृथ्वीराज के लिए दुर्दिन उपस्थित हो गया, आज मेरे सामन्तों का मस्तक जाता रहा । आज शत्रु सेना प्रवल हो गई, मेरी सेना का वल जाता रहा । आज पृथ्वी पति-विहीना रह गई, आज समस्त मर्यादाओं का उल्लङ्घन हो गया । हिन्दुओं का प्रभुत्व आज जाता रहा, मुसलमानों की सत्ता आज जोर जमाने लगी । सच तो यह है कि कछवाहा पजून की मृत्यु नहीं हुई, आज मेरे धनुष की प्रत्यञ्चा ही टूट गई !

स्वामि-भक्ति के जितने ज्वलन्त उदाहरण इस राजस्थान में मिलते हैं उतने अन्यत्र दुर्लभ हैं ।

(३३)

वङ्गाल और विहार के मुगल सरदारों ने जब बलवा खड़ा कर दिया तब अटक पर आक्रमणकारियों को रोक रखने का कार्य कुँवर मानसिंहजी के सुपुर्द किया गया था । अटक के घेरे का समाचार सुनते ही वे युद्धार्थ चल पड़े । जब वे सिन्ध नदी के पास पहुँचे तो नदी में तूफान आया हुआ था । जब

राजपूत सेना ने तूफानी नदी को पार करने में हिचकिचाहट दिखलाई तो सर्वप्रथम आप ही यह कहते हुए अपने घोड़े को लेकर नदी में कूद पड़े—

सबै भूमि गोपाल की, या में अटक कहाँ
जाके मन में अटक है, सोई अटक रहा।

अकबर के दरबार में महाराज मानसिंहजी ने इतनी ख्याति प्राप्त की कि भूषण जैसे कवि को भी कहना पड़ा—

केते राव राजा मान पावें पातसाहन सों
पावें पातसाह मान मान [illegible]॥

(३४)

सरबलन्दखाँ पर विजय प्राप्त कर जोधपुर के महाराज श्री अभयसिंहजी अपने सामने किसी को बदते ही न थे। विजय के मद में आकर उन्होंने बीकानेर पर भी घेरा डाल दिया। बीकानेर के राजा ने जोधपुर के विरुद्ध जयपुर के महाराज श्री सवाई-सिंहजी से सहायता की प्रार्थना करते हुए लिखा—

अभो ग्राह बीकाण गज, मारू समद अथाह।
गरुड छाँड गोविन्द ज्यूँ, सहाय करो जयशाह॥

अर्थात् जोधपुर के अभयसिंहजी ग्राह (मगर) हैं, मैं असहाय गज हूँ—मारवाड़ के अथाह समुद्र में मुझे घसीटा जा रहा है। विष्णु भगवान् गरुड़ की सवारी छोड़ नंगे पैरों ही जैसे गज की

सहायता के लिए चल पड़े थे, उसी प्रकार हे जयशाह ! आप मेरी भी सहायता कीजिये ।

इस पर जयसिंहजी ने शीघ्र ही अभयसिंहजी को लिखा कि वे बीकानेर के घेरे को उठालें किन्तु अभयसिंहजी ने उत्तर दिया कि मेरी रियासत के मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई हक किसी दूसरे को नहीं है । जोधपुर के महाराज रिश्ते में जयसिंहजी के दामाद होते थे किन्तु जयसिंहजी इस अनौचित्य को न देख सके । स्नेह-सूत्र को तोड़ कर उन्होंने कर्तव्य-पालन का ही [illegible] किया । तुरन्त ही उन्होंने जोधपुर पर आक्रमण कर दिया । अपनी राजधानी की रक्षा के लिए महाराज अभय-सिंहजी ने शीघ्र ही जोधपुर की ओर प्रयाण किया और बीकानेर के साथ सन्धि करने पर विवश हुए । जोधपुर के महाराज अभयसिंहजी को २१ लाख रुपया हर्जाने के रूप में देना पड़ा था ।

शरणागतवत्सलता को राजपूत राजाओं ने अपना सर्वो-परि धर्म समझा था; सच्चे अर्थ में क्षत्रिय नाम को उन्होंने ही सार्थक किया था ।

(३५)

अभयसिंहजी के छोटे भाई बखतसिंहजी ने जयपुर के सवाई जयसिंहजी के विरुद्ध अपने सम्मान की रक्षा के लिए युद्ध करना ही श्रेयस्कर समझा । युद्ध में आपने बड़ी वीरता दिखलाई और असंख्य घाव आपके शरीर पर लगे । बड़ी मुश्किल

से राजा साहब को युद्ध से पराङ्मुख किया गया। शाहपुरा के श्री उम्मेदसिंहजी इस युद्ध में सवाई जयसिंहजी की ओर से लड़े थे। जयपुर के महाराज की ओर से जब उनको राजाधिराज की उपाधि मिली तब वे गर्व से फूले न समाये। बखतसिंहजी ने जब उनको द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारा तो उम्मेदसिंहजी ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया किन्तु बखतसिंहजी के सामने उनकी एक न चली। राजाजी के शौर्य की प्रशंसा में एक कवि ने ठीक ही कहा है:—

भलकी जांणक बीजली, तीखी हथ तरवार।
बखतो भलक्यौ फौज विच, लीला रो असवार॥

अर्थात् बखतसिंहजी तीखी तलवार हाथ में लेकर जब शत्रु-सेना पर वार करते थे तो ऐसा जान पड़ता था जैसे बिजली चमक गई हो। अपने अश्व पर आरूढ़ राजाजी बड़े देदीप्यमान लगते थे।

(३६)

जोधपुर के महाराज अभयसिंहजी मरणासन्न अवस्था में शय्या पर लेटे थे। उन्हें भय था कि उनकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए युद्ध छिड़ेगा। अपने पुत्र रामसिंह की चिन्ता इस समय उनको विशेष रूप से सता रही थी। वे जानते थे कि अपने भाई बखतसिंह के सामने रामसिंह की एक न चलेगी। वे बड़े बेचैन हो रहे थे और कंठ तक आकर भी प्राण शरीर से नहीं

निकल रहे थे। उन्होंने सब सरदारों को इकट्ठा किया और पूछा कि कौन बखतसिंह के विरुद्ध उनके पुत्र की रक्षा का भार अपने सिर पर लेगा ? मेड़तिया सरदार शेरसिंहजी ने जो उत्तर दिया वह बहुत ही मर्मस्पर्शी है:—

शेरो ऊभां किम संचरै, गढ बखतारी आण।
मेड़तियो रण पोढसी, जद जासी जोधांण॥

अर्थात् शेरसिंह के जीवित रहते जोधपुर के दुर्ग में बखतसिंह की आन नहीं फिर सकती। (शेर के रहते भला अन्य का प्रभुत्व कैसे हो सकता है ?) जोधपुर तो तभी शत्रु के हाथ में जा सकेगा जब मेड़तिया शेरसिंह युद्ध में धराशायी हो जायगा। और सच्ची कर दिखाई इस वीर ने अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा को। महाराज रामसिंहजी के हाथ से जोधपुर तभी जा सका जब युद्ध करते हुए यह मेड़तिया सरदार अपने समस्त साथियों सहित चल बसा।

(३७)

मींठड़ी के कुँवर रामसिंहजी जिनकी अवस्था १८ वर्ष की थी अलवर रियासत में विवाहार्थ गये हुए थे। जब वे भाँवर ले रहे थे तब बखतसिंहजी और रामसिंहजी के युद्ध का समाचार उनको मिला। उन्होंने हिसाब लगा कर देखा कि मेड़ता यहाँ से १६० मील की दूरी पर है और युद्ध छिड़ने में केवल दो दिन बाकी रह गये हैं। भाँवर बीच में ही छोड़ कर घोड़े पर सवार हो कुँवर

युद्ध-क्षेत्र के लिए निकल पड़े। दो दिन में १६० मील चल कर जब वे वहाँ पहुँचे तो स्वयं कुँवर साहब तथा उनका घोड़ा थकावट से चूर चूर हो रहे थे। बड़ा घमासान युद्ध हो रहा था। कुँवर ने आव देखा न ताव, घोड़े सहित अपने आपको युद्ध की ज्वाला में होम दिया। कुँवर की वीर पत्नी, जिसने अपने पति का मुख भी अच्छी तरह न देखा था, जब मींठड़ी पहुँची तो उसे पति के धराशायी होने का समाचार मिला। 'रावत जायी डीकरी सदा सुहागण होय' के अनुसार वह मींठड़ी के महलों में न जाकर पति के शव को लेकर अग्नि-स्नान के लिए चितारूढ़ हो गई। राजस्थान के कवि ने सच ही कहा है:—

कांनां मोती झलहलै, गल सोनै री माला
असी कोस रो खड़ियो आयो, कँवर मींठड़ी वाला॥

(३८)

बखतसिंहजी के पुत्र विजयसिंहजी की मृत्यु के बाद जोधपुर की गद्दी के लिए युद्ध छिड़ा। शक्तिशाली सरदारों की सहायता से भीमसिंहजी सिंहासन पर बैठने में सफल हुए। उन्होंने एक एक कर सभी प्रतिस्पर्धियों को मौत के घाट उतार दिया; केवल एक मानसिंहजी जो उनके चचेरे भाई थे अपनी चतुराई से बच रहे। जालोर के किले पर भी उन्होंने अपना अधिकार कर लिया। कहते हैं महाराज भीमसिंहजी ने अपने चचेरे भाई को एक फुसलाने वाला पत्र लिखा था जिसमें कहा गया था कि

यदि मानसिंह जालोर छोड़ कर जोधपुर आ जायँ तो वे रियासत को परस्पर दो बराबर भागों में बाँट लेंगे। कवि महाराजा मानसिंहजी ने इसके उत्तर में लिखा था—

आभ फटै धर ऊलटै, फटै बगतरां कोर ।
सिर टूटै धड़ तड़फड़ै, जद छूटै जालोर ॥

अर्थात् जब आकाश फटने लगे, धरती उलट जाय, कवचों के कोर कट जायँ, सिरों के टुकड़े टुकड़े हो जायँ और वीरों के धड़ पृथ्वी पर गिर कर तड़फड़ाने लगें तभी जालोर छूट सकता है। *

(३९)

जोधपुर के महाराज मानसिंहजी की सभा में अनेक कवि और पंडित हर समय बने रहते थे। महाराज को स्वयं भी कविता

---

* 'विविध संग्रह' में कहा गया है कि "जब महाराज भीमसिंहजी के बखेड़े से महाराज मानसिंहजी जालोर के किले में अत्यन्त दुखी हो गये तो अनुमान से सं० १८६० में यह विचार कर लिया कि अब किला छोड़ चलें। जब चलने की तैयारी होने लगी तो "बींजोजी" नामक चारण कवि ने यह दोहा कह कर महाराज मानसिंहजी का साहस बढ़ाया। फिर वे वहीं ही रहे और ईश्वर ने ऐसा अनुग्रह किया कि फिर वह ही भीमसिंहजी की फौज उनको जोधपुर की गद्दी बैठाने को आई।" पृ० १४४–१४५।

ने का बड़ा शौक़ था । आप में एक विशेष गुण यह था कि
जो कोई नया मनुष्य इनके पास आता वह खाली हाथ कभी नहीं
लौटता था । इनका सिद्धान्त था कि जो कोई किसी के पास
जाता है, वह लाभ की आशा से ही जाता है । यदि राजा के
पास जाकर भी किसी को निराश होकर लौटना पड़े तो फिर एक
राजा में और सामान्य पुरुष में अंतर ही क्या रह जाता है ।
आपके विषय में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है:—

जोध बसायो जोधपुर, व्रज कीनो व्रजपाल ।
लखनेऊ काशी दिली, मान कियो नेपाल ॥

अर्थात् राव जोधाजी ने तो अपने नाम पर जोधपुर नगर
बसाया । महाराज विजयसिंहजी ने (वल्लभ संप्रदाय की भक्ति
के कारण) उसे व्रज बना दिया (अर्थात् यहाँ पर वैष्णव मत
का बड़ा प्रचार किया) । परन्तु महाराजा मानसिंहजी ने इसे
एक साथ ही लखनऊ, काशी, दिल्ली और नेपाल बना दिया
(अर्थात् यहाँ पर महाराज की गुणग्राहकता के कारण अनेक
कत्थक, पंडित, गवैये और योगी एकत्रित हो गए थे ।) *

(४०)

राव अमरसिंहजी जोधपुर-नरेश गजसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र
थे । इनके पिता ने इनके छोटे भ्राता जसवन्तसिंहजी को अप

* मारवाड़ का इतिहास (द्वितीय भाग) -प० विश्वेश्वरनाथ
पृ० ४१६-४०

उत्तराधिकारी मनोनीत कर लिया था। इस पर यह जोधपुर-राज्य की आशा छोड़ शाहजहाँ के पास चले गये थे जहाँ इनका बड़ा आदर-सम्मान हुआ। एक बार बीमार हो जाने के कारण आपने दरबार में जाना बन्द कर दिया। स्वस्थ होने पर जब दरबार में उपस्थित हुए तब बादशाह के बख्शी सलाबतखाँ ने द्वेषवश इन से कुछ कटु शब्द कह दिये। फिर क्या था, आपकी स्वतंत्र प्रकृति जग उठी और बादशाह के सामने ही सलाबतखाँ के कलेजे में कटार भोंक दी। प्रवाद है कि सलाबतखाँ ने उन्हें 'गँवार' कह कर संबोधित करना चाहा था जिसका परिणाम निम्नलिखित दोहे से प्रकट है:—

> उण मुख तैं गग्गो कह्यो, इण कर लई कटार।
> वार कहण पायो नहीं, जमदढ हो गइ पार॥

अर्थात् सलाबतखाँ ने गँवार कहने के लिए मुँह से 'गँ' शब्द ही निकाला था कि राव अमरसिंहजी ने कटार हाथ में ले ली और उसके 'वार' कहने के पहले ही रावजी की कटार उसके कलेजे के पार हो गई!

(४१)

मारवाड़ निवासी दुरसा आढ़ा वीर रस का प्रसिद्ध कवि हुआ है। प्राचीन जमाने के चारण केवल कविता ही नहीं करते थे, युद्ध में सक्रिय भाग भी लिया करते थे। सिरोही के राव सुरताण के साथ जोधपुरवाले रायसिंह तथा सीसोदिया जग-

ाल की जो लड़ाई हुई थी उसमें दुरसा भी रायसिंह की ओर से युद्ध में शामिल हुआ था। युद्ध में जब वह बुरी तरह घायल हो गया था, सुरताण के एक सरदार ने कहा कि इसको भी दूध पिलाना (मारना) चाहिए। यह सुन कर दुरसा ने कहा—मैं राजपूत नहीं, चारण हूँ और चारण राजपूतों की दृष्टि में अवध्य होते हैं। इस पर उससे कहा गया कि यदि तुम वास्तव में चारण हो तो इस समरा देवड़ा की प्रशंसा में जो अभी मारा गया है, कोई दोहा कहो। दुरसा ने उसी क्षण निम्नलिखित दोहा कह सुनाया—

धंर रावां जस डूंगरां व्रद पोतां शत्र हाण।
समरे मरण सुधारियो, चहु थोकां चहुआण॥

अर्थात् चौहान समरा ने चारों तरह से अपनी मृत्यु को सार्थक किया, अर्थात् राव सुरताण की भूमि की रक्षा की, पहाड़ों की तारीफ करवाई, अपने वंशजों के लिए सम्मान छोड़ गया और शत्रुओं को हानि पहुँचाई।

(४२)

कहा जाता है कि एक बार अपने कुटुम्ब की दुरवस्था देख कर महाराणा प्रताप का जी भर आया और उन्होंने अकबर से सन्धि करने का विचार कर लिया। जब यह समाचार 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' के रचयिता पृथ्वीराज को मिला तो उन्हों महाराणा को लिख भेजा—

पटकूँ मूँछाँ पाण, के पटकूँ निज तन करद ।
दीजे लिखे दीवाण, इण दो महली बात इक ॥

इस पर महाराणा ने फिर दृढ़ता धारण करली और उत्तर में लिख भेजा—

खुशी हूँत पीथल कमध, पटको मूँछाँ पाण ।
पछटण है जेतै पतो, कलमाँ सिर केवाण ॥

(४३)

राव चन्द्रसेन मारवाड़ नरेश राव मालदेवजी के पुत्र थे जो वि० सं० १६१६ में जोधपुर की गद्दी पर बैठे । आपने रात-दिन पहाड़ों में भ्रमना और यवनों की विशाल सेना से लोहा लेना अंगीकार किया किन्तु अकबर की अधीनता नाम मात्र को भी स्वीकार नहीं की। अकबर की बड़ी इच्छा थी कि राव चन्द्रसेन किसी प्रकार उसकी अधीनता स्वीकार करले किन्तु यह मनस्वी वीर अंत तक अपने स्वाभिमान पर दृढ़ रहा । आगे चल कर महाराणा प्रताप ने इसी मार्ग का अनुसरण किया था । राजस्थान के कवि ने इस सम्बन्ध में यथार्थ ही कहा है:—

अणदगिया तुरी ऊजला असमर, चाकर रहण न डिगियो चीत।
सारे हिन्दुस्तान तणे सिर, पातल नै चंद्रसेण प्रवीत ॥

अर्थात् उस समय सारे हिन्दुस्तान में महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेन,, यही दो ऐसे वीर थे, जिन्होंने न तो अकबर की

अधीनता ही स्वीकार की और न अपने घोड़ों पर शाही दाग़ ही लगने दिया तथा जिनके शस्त्र हमेशा ही यवन सम्राट् के विरुद्ध चमकते रहे ।

(४५)

जोधपुर के राव सीहाजी जिस समय करीब २०० साथियों को लेकर महुई से पश्चिम की तरफ़ चले थे, उस समय उनका विचार द्वारका की तरफ जाने का था । परन्तु रास्ते में जब यह पुष्कर में ठहरे तब वहीं पर इनको भेंट तीर्थयात्रा के लिए आये हुए भीनमाल * के ब्राह्मणों से हो गई । उन दिनों मुलतान की तरफ़ के मुसलमान बहुधा भीनमाल पर आक्रमण कर लूट-मार किया करते थे । ब्राह्मणों ने सीहाजी से सहायता की प्रार्थना की । सीहाजी ने भीनमाल जाकर आक्रमणकारी मुसलमानों के मुखियाओं को मार डाला । इस विषय का निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है:—

भीनमाल लीधी भड़ै, सीहै सेल बजाय ।
दत दीन्हौ सत संग्रह्यो, ओ जस कदे न जाय ॥

अर्थात् वीर सीहाजी ने भाले के जोर से भीनमाल पर अधिकार कर लिया । ब्राह्मणों को दान देकर उन्होंने पुण्य का संचय किया । उनका यह यश सदा ही अमर रहेगा ।

---

* मारवाड़ के दक्षिणी प्रान्त का एक नगर

ख्यातों में प्रसिद्ध है कि एक बार गुजरात के यवन-शासक का पुत्र महेवे की कुछ लड़कियों को ले भागा था। इसके प्रतिशोध के लिए रावल जगमालजी व्यापारी का वेष बना कर उसके राज्य में पहुँचे और ईद के दिन मौक़ा पाकर उन कन्याओं को बादशाह की लड़की सहित ले आये। इस पर वहाँ के शासक ने महेवे पर धावा बोल दिया परन्तु युद्ध में जगमालजी के प्रहारों से व्याकुल होकर उसे अपने शिविर में घुस जाना पड़ा। इस संबन्ध में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है:—

पग पग नेजा पाड़िया, पग पग पाड़ी ढाल।
बीबी पूछै खान ने, जग केता जगमाल॥

अर्थात् जगमाल द्वारा कदम-कदम पर शत्रुओं के नेजे तोड़ कर गिराने और कदम-कदम पर उनकी ढालें गिराने का हाल सुन कर बीबी खान से पूछती है कि यह तो बताओ, आख़िर, दुनिया में कितने जगमाल हैं ?

(४६)

गोगादेव वीरमजी के छोटे पुत्र थे। इनका जन्म सन् १३७८ में हुआ था। इन्होंने आसायच राजपूतों को हरा कर, सेखाला और उसके आसपास के २७ गाँवों पर अपना अधिकार जमा लिया था।

एक बार अनावृष्टि के कारण महेवे की बहुत सी प्रजा को
अपनी गायों आदि सहित मालवे की तरफ जाना पड़ा । इन्हीं
में गोगादेव का कृपापात्र राठोड़ तेजा भी था । अगले वर्ष
वर्षा हो जाने पर जब वह वापिस लौट रहा था, उस समय उसके
और बांसोलिया गाँव के स्वामी मोयल माणकराव के बीच
झगड़ा हो गया । तेजा ने गोगादेव के पास पहुँच उसकी
शिकायत की । यह सुन गोगादेव ने माणकराव पर चढ़ाई कर
उसे परास्त कर दिया ।

एक बार गोगादेव लच्छूसर गाँव के पास ठहरे हुए थे ।
वे बहुत दूर से आये थे, इस कारण उनके घोड़े भूखे और थके-
माँदे थे । उन्होंने अपने घोड़ों को जङ्गल में चरने के लिए
छोड़ दिया । घोड़े हरी घास चरते चरते कुछ दूर जा निकले ।
इसी समय जोहियों ने पहले तो गोगादेव के घोड़ों को और भी
दूर भगा दिया और फिर वे एकाएक आगे बढ़ गोगादेव पर टूट
पड़े । इस विषय का यह दोहा प्रसिद्ध है:—

भूखा, तिसिया थाकड़ा, राखीजे नेड़ाह ।
ढलिया हाथ न आवसी, गोगादे घोड़ाह ॥

अर्थात् भूखे, प्यासे और थके हुए घोड़ों को नजदीक ह
रखना चाहिए । हे गोगादेव ! दूर निकल जाने पर वे ह
नहीं आयेंगे ।

गोगादेव ने अपनी रत्नतली नामक तलवार सम्हाल कर शत्रु-सेना का बड़ी वीरता से सामना किया, तथापि कुछ देर बाद जाँघों के कट जाने से वे पृथ्वी पर गिर पड़े परन्तु मरते मरते भी उन्होंने अपनी तलवार का एक हाथ जोहियों के मुखिया धीरदेव पर जमा ही दिया जिससे उसके दो टुकड़े हो गये।

गोगादेव की राजस्थान में देवता की भाँति पूजा होती है।

(४७)

राव चूंडाजी वीरमदेव के पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १४३४ में हुआ था। पिता की मृत्यु के समय इनकी अवस्था केवल ६ वर्ष की थी। इसके बाद ७ वर्ष तक वह गुप्त रूप से कालाऊ में आल्हा चारण की देखभाल में रहे। बड़े होने पर राव चूंडाजी प्रसिद्ध योद्धा हुए। एक बार मंडोर पर इंदों (पड़िहार राजपूतों) का अधिकार हो गया किन्तु इंदों ने सोचा कि यद्यपि एक बार तो इस दुर्ग पर हमने अधिकार कर लिया है पर शत्रु-सेना के विरुद्ध इसकी रक्षा करना अवश्य ही कठिन हो जायगा। इसलिए इंदों ने अपने मुखिया राना उगमसी की पोती का चूंडाजी के साथ विवाह कर दिया और दहेज में मंडोर का किला भी दे दिया जैसा कि निम्नलिखित सोरठे में स्पष्ट है:—

इंदा रो उपकार, कमधज मत भूलो कदे।
चूंडो चँवरी चाढ़, दी मंडोवर दायजे॥

जिस समय चूंडाजी मंडोर के स्वामी हुए उस समय आल्हा चारण ने पुरानी बात याद दिलाने के लिए निम्नलिखित सोरठा पढ़ कर सुनाया था:—

चूंडा नावै चीत, काचर कालाऊ तणा।
भूप भयौ भैभींत, मंडोवर रै मालियै॥

अर्थात् हे चूँडाजी! इस समय तो आपको कालाऊ के कचरों की याद भी नहीं आती है क्योंकि इस समय आप मंडोर के इस ऊँचे महल में राजा होकर पत्थर की दीवार से बने बैठे हैं। (किसी की तरफ़ देखते तक नहीं!)

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने सोरठे के उत्तरार्द्ध का "अरै भयो भैभीत मंडोवर के मालिये" पाठ मान कर अर्थ किया है:—

Now that you have become owner of palaces in Mandore and have nothing to fear. संभवतः 'भैभीत" को शास्त्रीजी ने 'भय भी जिससे डर जाय' इस अर्थ में लिया हो।

कहते हैं कि उक्त सोरठा सुन कर चूंडाजी ने आल्हा चारण को अपने पास बुलवा कर बड़ा आदर-सत्कार किया और दानादि से सन्तुष्ट कर विदा कया।

(४८)

कान्हलजी जोधाजी के छोटे भाई थे। इनका अपने भतीजे बीकाजी पर बड़ा स्नेह था। एक दिन कान्हलजी बीकाजी का हाथ

पकड़े और उनको स्नेहभरी दृष्टि से देखते हुए महाराज जोधाजी के पास आ रहे थे। उनकी यह प्रेम मुद्रा देख जोधाजी ने हास्य-विनोद में कान्हलजी से कहा कि आज तो भतीजे का ऐसे हाथ पकड़ा है मानो कहीं का राज्य दिलायेंगे। यह सुन सं० १५२७ में वीर कान्हलजी जोधपुर से चले और जाटों के १४ भूमिचारों को जीत कर एक नया राज्य जमाया। सम्वत् १५४५ में अपने भतीजे बीकाजी के नाम से बीकानेर नगर बसाया और वहाँ का राज्य बीकाजी को दे दिया।

कमधज राज भतीज को, सज बाँधे बल सार।
जिण कांन्हल भांजेजबर, चौदह भूमीचार॥

(५६)

सं० १७२५ में खंडेले का मन्दिर तोड़ने के लिए शाही सेना आई। उस समय वहाँ के राजा बहादुरसिंहजी तो डर कर अन्यत्र चले गये किन्तु ठाकुर सुजानसिंहजी जो खंडेले के भाई बन्धुओं में थे वीरतापूर्वक लड़ते हुए धर्म की बलिवेदी पर चढ़ गये। उनके जीते जी मन्दिर कोई नहीं तोड़ सका। निम्नलिखित आह्वान कितना मर्मस्पर्शी है:—

झिरमिर झिरमिर मेघा बरसै मोरां छतरी छाई।
कुल में छै तो आव सुजाणा, फोज देव रै आई॥

(५०)

सं० १७२५ में जब महाराज जसवन्तसिंहजी जमरूद में थे तब किसी दिन दुर्गादासजी सो रहे थे। उन पर जब धूप आ गई तो महाराज ने स्वयं उन पर छाया की। मारवाड़ के सरदारों ने जब महाराज को ऐसा करने से मना किया तो उन्होंने उत्तर दिया कि मैं इस पर छाया इसलिए करता हूँ कि यह किसी दिन सम्पूर्ण मारवाड़ पर छाया करेगा। इस विषय का निम्नलिखित सोरठा प्रसिद्ध है—

जसवँत कहियो जोय, धर रखवालो गूदड़ा।
साँची कीधी सोय, आछो आसकरन्नवत ॥

मारवाड़ के प्रसिद्ध वीर शिरोमणि दुर्गादास जैसे नररत्न बड़े भाग्य से पैदा होते हैं। उनके साहस की प्रशंसा में किसी कवि ने ठीक ही कहा है:—

बारह मासां बीह, पाण्डव ही रहिया प्रछन्न।
दुरगो हेको दीह, आछत रह्यो न आसवत ॥

अर्थात् पाण्डव भी भयभीत होकर १२ वर्ष तक वन में छिपे रहे किन्तु आसकरणजी के पुत्र दुर्गादास एक दिन भी छिपे हुए नहीं रहे।

(५१)

महाराणा (अरिसिंह दूसरे) के समय मेवाड़ पर माधवराव सिंधिया ने चढ़ाई की। उस समय अर्जुनसिंह ने उसकी सेना से युद्ध किया। फिर गंगराड़ में महापुरुषों के साथ महाराणा की जो लड़ाई हुई उसमें अर्जुनसिंह बड़ी वीरता के साथ लड़ा और उसके कई घाव लगे। इस विषय का निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है—

लग्गि अजन महराज के, सतर पञ्चदस घाय।
कहुं तन देखिय मिलह कटि, खत्रवट छाप सुहाय॥

(५२)

मेवाड़ के भारतसिंह का उत्तराधिकारी उम्मेदसिंह हुआ। वह अपने छोटे बेटे जालिमसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। इसलिए उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र उदोतसिंह को ज़हर देकर मार डाला और उदोतसिंह के पुत्र रणसिंह को मारने के लिए एक सिपाही भेजा जिसने उस पर तलवार का वार किया। इतने में रणसिंह के १४ वर्ष के पुत्र भीमसिंह ने अपनी तलवार से उस सिपाही का काम तमाम कर डाला। प्रवाद प्रचलित है कि उम्मेदसिंह ने रणसिंह के वंश का नाश कर जालिमसिंह को ही राजा बनाने का पक्का निश्चय कर लिया था, परन्तु जब मेहड़ू चारण कृपाराम ने यह हाल सुना तो उसने जाकर उम्मेदसिंह को यह सोरठा सुनाया:—

मिण चुण मोटोड़ाह, तैं आगे खाया घणा।
चेलक चीतोड़ाह, अब तो छोड़ उमेदसी ॥

इस सोरठे का उसके चित्त पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने अपना यह बुरा विचार छोड़ दिया ।

(५२)

महाराणा रायमल के दो बड़े कुँवर थे-पृथ्वीराज और जयमल । एक ज्योतिषी ने यह भविष्यवाणी करदी थी कि संग्रामसिंह रायमल की गद्दी पर बैठेगा । इस पर दोनों कुँवरों और संग्रामसिह में युद्ध छिड़ा । संग्रामसिंह घायल होकर भगता हुआ सेवंत्री गॉव मे पहुँचा । संयोगवश बीदा उस समय वहीं था । उसने संग्रामसिंह को खून से तरबतर देख कर उसे घोड़े से उतारा और उसके घावो पर पट्टियाँ बांधी । इसी बीच मे संग्रामसिंह का पीछा करता हुआ जयमल भी वहॉ पहुँच गया । उसने बीदा से कहा कि तुम संग्रामसिह को मेरे सुपुर्द कर दो किन्तु शरणागत राजकुमार की रक्षा करना उसने अपना परम कर्तव्य समझा । राजकुमार संग्रामसिह को तो घोड़ पर सवार करा कर गोड़वाड़ की तरफ रवाना कर दिया और वह स्वयं अपने छोटे भाई सीहा व अपने पुत्रों तथा बहुत से राजपूतों सहित जयमल और उसके सैनिकों से लड़ कर काम आया । उसकी धर्म पत्नी उसके साथ सती हुई । धन्य है राजपूतों की शरणागत-रक्षा जिसके लिए वे अपने प्राणों की बाजी लगा दिया करते थे ।

जब संग्रामसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठा तो उसने बीदा के बचे हुए परिवार को सहायता देने का भरसक प्रयत्न किया और निःस्वार्थ भाव से प्राण देने वाले बीदा की बहुत कुछ प्रशंसा की जिसके सम्बन्ध में निम्नलिखित पद्य प्रसिद्ध है:—

सांच वचन अवसाण सुध नाहर ना नट्टे
जेतमाल कुल जनमिया मुख कह न पलट्टे ॥
जेमल रा दल जूझिया करवालां कट्टे
सांगो भोगे चित्रकोट सर बीदा सट्टे ॥

सच है, बीदा के सिर के बदले ही संग्रामसिंह को चित्तौड़ का राज्य मिला था।

(५४)

इतिहास में प्रसिद्ध है कि उदयसिंह अपने पिता महाराणा कुम्भा को मार कर सन् १४६८ में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। राजपूताने के लोग पितृघाती को प्राचीन काल से ही 'हत्यारा' कहते और उसका मुख देखने में भी घृणा करते थे; इतना ही नहीं, वंशावली-लेखक तो उसका नाम तक वंशावली में नहीं लिखते थे। * सरदारों में से किसी ने उदयसिंह का साथ नहीं दिया जिससे उसे पद-पद पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसे एक स्थान से दूसरे स्थान को भगना पड़ा और सन् १४७३ में रायमल ने अपने भाई उदयसिंह से राज्य छीन कर

---

* उदयपुर राज्य का इतिहास (ओझाजी) पृ० ६६६

...वाड़ की गद्दी पर अपना अधिकार कर लिया । इस विषय का निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है:—

ऊदा बाप न मारजै, लिखियो लाभै राज ।
देश बसायो रायमल, सर्‌यो न एको काज ॥

अर्थात् हे उदयसिंह ! बाप को नहीं मारना चाहिए था; राज्य तो भाग्य से मिला करता है । राज्य का स्वामी तो रायमल हुआ और तेरी एक न चली ।

(५५)

महाराणा प्रताप अपने प्रसिद्ध घोड़े चेतक पर सवार थे । उन्होंने घोड़े को चक्कर दिला कर कुँवर मानसिंह से कहा कि अब जितना पराक्रम दिखलाना हो, दिखलाओ; प्रतापसिंह आ पहुंचा है । यह कह कर उन्होंने मानसिंह पर भाले का वार किया परन्तु हौदे में झुक जाने से महाराणा का बर्छा (भाला) मानसिंह के कवच में ही लगा और वे बच गये । कोई कोई यह भी मानते हैं कि महाराणा का बर्छा लोहे के हौदे में लगा किन्तु निम्नलिखित पद्य से प्रकट है कि कवच में ही भाल[ा] लगा था:—

बाही राण प्रतापसी बखतर में बर्छीह ।
जाणे झींगर जाल में मूंह काढ़े मच्छीह ॥

उदयपुर के महाराणा जगतसिंह बड़े दानी थे। वे भाट चारणों, ब्राह्मणों आदि को बहुत सा दान दिया करते थे जैसा कि निम्नलिखित दोहों से स्पष्ट है:—

सिन्धुर दीधा सात सै, हय वर पञ्च हजार।
एकावन सासण दिया, जगपत जगदातार॥

अर्थात् जगत के दाता जगतसिंह ने ७०० हाथी, ५ हजार घोड़े और ५१ गाँव दान कर दिये।

साँई करे परेवड़ा, जगपत रे दरबार।
पीछोले पाणी पियां, कण चुग्गां कोठार॥

अर्थात् हे ईश्वर! यदि तू हमें कबूतर भी बनावे तो जगतसिंह के दरबार का कबूतर बनाना ताकि पीछोले में पानी पिया करें और कोठार में अन्नकण चुगा करें।

जगतो तो जाणे नहीं, मात पिता रो नाम।
तात पिता रटतो रहै, निस दिन योही काम॥

(माता का पिता = नाना; पिता का पिता = दादा)

अर्थात् जगतसिंह ना ना, इन्कार करने का तो नाम भी नहीं जानता; यह आठों पहर दादा अर्थात् दान दो, दान दो ही रटता रहता है—रात दिन उसका यही काम है।

(५७)

दुर्गादास की सच्ची स्वामि-भक्ति, वीरता, तथा राज्य की उत्तम सेवा के कारण उसकी प्रतिष्ठा राठोड़ सरदारों तथा अन्य राजाओं आदि में बहुत कुछ बढ़ी हुई थी, जिसको सहन न कर महाराज अजीतसिंह ने बुरे लोगों के बहकाने में आकर अपने और अपने राज्य के रक्षक दुर्गादास को मारवाड़ से निकाल दिया जिससे महाराज की बड़ी बदनामी हुई। इस विषय में निम्न-लिखित पद्य प्रसिद्ध है:—

महाराज अजमाल री, जद पारख जाणी ।
दुर्गो देशां काढ़ियो, गोलां गांगाणी ॥

अर्थात् महाराज अजमाल (अजीतसिंह) की परीक्षा तो तब हुई जब उन्होंने दुर्गादास को देश से निकाल दिया और गोलों को गांगाणी जैसी जागीर दी। वहाँ से दुर्गादास महाराणा की सेवा में आ रहा जहाँ उसकी बड़ी आवभगत हुई। महाराणा ने बाद में उसको रामपुरा भेज दिया था। वहीं उसका देहान्त हुआ जिससे उसकी दाह क्रिया क्षिप्रा नदी के तट पर हुई जैसा कि निम्नलिखित प्राचीन पद्य से ज्ञात होता है:—

इण घर आही रीत, दुर्गो सफरां दागियो ।

अर्थात् जोधपुर राज्य के घराने की ऐसी ही रीति है कि दुर्गादास का दाह भी क्षिप्रा नदी पर हुआ, मारवाड़ में नहीं ।

(५८)

उदयपुर (शेखावाटी) के टोडरमल बड़े दानी थे । उदयपुर (मेवाड़) के महाराणा जगतसिंह ने जो स्वयं बहुत बड़े दानी थे टोडरमल की परीक्षा के लिए हरिदासजी बारहठ को भेजा । टोडरमल गुप्त वेश में बारहठजी की पालकी उठाने वालों में शामिल हो गये । उदयपुर पहुँचने पर बारहठजी ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि टोडरमल उनकी अगवानी में नहीं आये किन्तु जब बारहठजी को वस्तु-स्थिति का पता लगा तो उन्होंने निम्नलिखित दोहा कह सुनाया—

दोय उदयपुर ऊजला, दुइ दातार अटल्ल ।
इकतो राणो जगतसी, दूजो टोडरमल्ल ॥

अर्थात् इस संसार में दो ही उदयपुर प्रसिद्ध हैं-एक उदयपुर (शेखावाटी) और एक उदयपुर (मेवाड़)-और दो ही दातार हैं-एक राणा जगतसिंह और दूसरे टोडरमल ।

(५६)

उदयपुर के महाराणा जगतसिंहजी ने मूँदियाड़ के ठाकुर करणीदानजी की पेशवाई की थी जिसके सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहा आज तक प्रसिद्ध है:—

करनारो जगपत कियो, कीरत काज कुरब्ब ।
मन जिण धोखो ले मुआ, साह दिल्लीस सरब्ब ॥

अर्थात् जगतसिंह ने यश के लिए करणीदानजी की यह इज्जत की कि जिसको पाने के लिए दिल्ली के सब बादशाह मन में धोखा लेकर ही मर गये।

(६०)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि चारणों की उक्तियों से प्रसन्न होकर राजा महाराजाओं ने अनेक बार उनको लाख-पसाव, करोड़पसाव आदि दान दिये हैं—कभी कभी तो आदर भाव से समस्त राज्य तक चारणों को अर्पित कर दिया गया था। प्रसिद्ध है कि ऊनड़ जाम ने सातों सिन्धुओं का राज्य सावल जाति के चारण को दे दिया था जिसके संबन्ध में निम्नलिखित दोहा कहा जाता है:—

माई एहा पूत जण, जेहा ऊनड़ जाम।
दीधी सातों सिन्धड़ी, ज्यों देवै इक गाम॥

अर्थात हे माता! यदि पुत्र पैदा करे तो ऊनड़ जाम जैसे पुत्र पैदा करना जिसने सातों सिन्धुओं का दान इस प्रकार कर दिया था जैसे एक गाँव दान में दिया हो।

(६१)

प्रवाद है कि महियारिया जाति के चारण हरिदासजी को महाराणा साँगा ने प्रसन्न होकर चित्तौड़ का राज्य समर्पित कर दिया था। उसी कवि के कहे हुए गीत के निम्नलिखित पद से यह बात प्रमाणित होती है:—

(६५)

श्री रामदयालजी गाडण हरमाड़ा (जयपुर) के रहने वाले थे। जयपुर नरेश महाराज रामसिंहजी के आप मुख्य सभासदों में से थे। महाराज भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे, इसलिए वे प्रायः महाराज के समीप ही बैठा करते थे। एक दिन वे देर से पहुँचे और उनके कुछ सजातीय सरदार जो पहले पहुँच चुके थे महाराज के समीप बैठ गये। अतः रामदयालजी को दूर बैठना पड़ा। पहले आये हुए सरदार यह देख कर मुसकराये। रामदयालजी को यह बहुत बुरा लगा। कहा जाता है कि रुष्ट होकर उन्होंने निम्नलिखित दोहा कहा—

स्वान बड़े नहँ हो सकैं, हरदम रहैं हजूर।
कहा बड़प्पन घट गयो, जो गज बंधे दूर॥

(६६)

बिदाद (मारवाड़) में ईसरसिंह नामक एक मोहिल राजपूत रहता था। उसकी बहिन का विवाह मीठड़ी (मारवाड़) के एक राजपूत से हुआ था। मीठड़ी के ठाकुर जालमसिंहजी ने बिदाद की गायें घेर लाने का विचार किया। ईसरसिंह का बहनोई मीठड़ी ठाकुर के यहाँ नौकर था। उसने घर पर यह चर्चा की तो उसकी स्त्री (ईसरसिंह की बहिन) ने विलाप करना प्रारम्भ कर दिया। इस आकस्मिक क्रन्दन को सुन कर पड़ोसियों ने जब इस का कारण पूछा तो ईसरजी की बहिन ने कहा कि

जब विदाद की गायें घेरी जायँगी तो मेरा भाई अवश्य ही गायों की रक्षार्थ वीरतापूर्वक लड़ते लड़ते प्राण त्याग देगा। जिस समय विदाद की गायें घेरी गईं उस समय ईसरसिंह अपने खेती के ओजार ठीक करवाने के लिए कारीगर की दूकान पर गया हुआ था। ठा० जालमसिंह ने ईसरजी के बहनोई को ताना देते हुए कहा कि तुम्हारी स्त्री तो कह रही थी कि मेरा भाई अवश्य ही गायों की रक्षार्थ प्राण देने आ पहुँचेगा किन्तु वह तो कहीं दिखाई नहीं देता। उधर ईसरसिंह ने जब बाहरू ढोल की आवाज सुनी तो उसने तुरन्त घर पहुँचते ही अपनी तलवार उठाई और युद्ध के लिये तैयार हो गया। माता ने कहा—दही-रोटी तो खा जा और स्त्री ने कहा—पैदल ही क्यों जाते हो, मैं अभी घोड़ी पर जीन कसे देती हूँ, उस पर सवार होकर जाइये। माता की आज्ञा से कुछ दही पीकर यह राजपूत तुरन्त घोडी पर सवार होकर युद्ध के लिये निकल पडा। जब वह युद्ध-क्षेत्र में पहुँचा तो मीठड़ी ठाकुर ने ईसरसिंह से कहा कि तुम्हारे लिए जैसा विश्वास प्रकट किया गया था, वैसा ही तुमने कर दिखाया। अब उचित यह है कि हम परस्पर समझौता कर लें; आधी गायें तुम ले जाओ, आधी हमें ले जाने दो किन्तु ईसरसिंह ने उत्तर दिया कि अब यह नहीं हो सकता; या यो गायें ही जायँगी या मेरा सिर ही जायगा। किन्तु शर्त यह है कि मैं अकेला हूँ, इसलिए आप लोग एक एक कर मुझसे युद्ध करें। शर्त मंजूर करली गई। एक एक करके

सत्रह व्यक्ति ईसरसिंह के सामने आये और इस वीर राजपूत ने सबको मार गिराया। मीठड़ी ठाकुर ने जब यह देखा कि अनर्थ हुआ चाहता है तो उसने सबको एक साथ वार करने का हुक्म दिया। अंत में बड़ी वीरता से लड़ते हुए यह योद्धा धराशायी हुआ।

इस प्रसंग में किसी चारण कवि का कहा हुआ गीत यहाँ उद्धृत किया जाता है:—

मांटीपण जिसो जाणता मोहिल
जालमसार बहंतां जड्डो
डारण आय ऊभो देदावत
ईसरो सरदारां अड्डो ॥१॥
ठाहर पग मांडो ठकरालां
हूँ पहुँतौ सुण वाहर हक्को
मो ऊभां अतरी छै मालम
सालम धन ले जाय न सक्को ॥२॥
मुजरो छै पारख मरदां री
दिखमी खत्रवाट विसेखो
आओ खग झटका ईसर सूं
दोय दोय बटका देखो ॥३॥
धड़ पड़ियौ लड़ियौ खग धारां
चित सोह जाय विमाणां चड़ियो

सारै साथ. किया मिल सुरजा
पुरजा पुरजा हुय पड़ियो ॥४॥
पड़ियां पछे धेनली पेलां
ऊभा पगां न दीधी एक
चवता खुरां सुरी सह चाली
टूक टूक ऊपर पग टेक ॥५॥

(६७)

मनोहरपुर के राव त्रिलोकचन्दजी ने हणूंतिया ग्राम भूधर-दासजी बारहठ को सं० १६०० में दे दिया था । बारहठजी के एक पत्र अमरदासजी का विवाह गोरखदासजी की पुत्री नर्मदा बाई के साथ हुआ था । एक बार अमरदासजी तो अपने गाँव पर थे और इनकी पत्नी पीहर गई हुई थीं । अमरदासजी बहुत बीमार हुए तो उधर पीहर में ही उनकी पत्नी ने सहज प्रेरणा वश ही अपने पिता से कहा कि मुझे यथासम्भव शीघ्र ही ससुराल रवाना कर दीजिये । पिता ने कहा कि अभी तुम्हें आये तो थोड़े ही दिन हुए हैं और ससुराल से कोई लेने भी नहीं आया है, इसलिए ऐसी परिस्थिति में यह आग्रह कैसा ? किन्तु नर्मदा बाई नहीं मानीं और उन्हें रथ में बिठा कर कुछ आदमियों के साथ रवाना कर दिया । उधर अमरदासजी का स्वर्गवास हो गया था । जिस दिन अंतिम संस्कार के लिए उनका शव श्मशान में ले जाया गया तो लोगों ने एक रथ को

उधर ही बढ़ते हुए देखा। रथ श्मशान में पहुँचा। नर्मदा बाई रथ से उतरीं और अपने पति का सिर गोद में लेकर सती हो गई। इस विषय के निम्नलिखित दोहे प्रसिद्ध हैं:—

निरमल कीधा नरवदा, पति पूरबला पाप।
भलो उधारयो भूधरो, बीजो गोरख आप॥
आयां जायां आंगणै, धीहड़ल्यां ज्यां धन्न।
काया होमै कंथ सिर, माया धरे न मन्न॥

(६८)

छापोली (उदयपुरवाटी) के टोडरमलजी शेखावत बड़े दानी हुये। उनके वंश में श्री सुजानसिंहजी हुए जो धर्म-रक्षा को ही अपना सर्वोपरि कर्तव्य समझते थे। औरंगजेब जब मंदिर तुड़वा रहा था, उस समय खंडेले के मंदिर की रक्षार्थ आप बलिदान हो गये थे —इसी प्रकार एक राठोड़ मेड़ता के मंदिर की रक्षा करते करते काम आये थे जिनके सम्बन्ध में निम्न लिखित गीत प्रसिद्ध है:—

आया दल असुर देवरां ऊपर
कूरम कमधज एम कहै
ढहियां सीस देवल ढहसी,
ढह्यां देवालो सीस ढहै ॥१॥
माल हरो गोपाल हरो मँढ
अडिया दुहुँ खागां अणभंग

उतमंग साथ उतरसी अंडो
अंडा साथ पडै उतमंग ॥२॥
स्याम सुतन पातल सुत सभ्रिया
निज भगतां बांध्यो हर नेह
देही साथ समायां देवल
देवल साथ समायां देह ॥३॥
कुरम खंडेले कमँध मेड़ते
मरण तणो बाँध्यो सिर मोड़
सूजा जिसो नहीं कोइ सेखो
राजड़ जिसो नहीं राठोड़ ॥४॥

(६६)

बीकानेर महाराज रायसिंहजी के छोटे भाई अमरसिंहजी बड़े वीर थे। जब विद्रोही होकर ये लूट-खसोट करने लगे तो अकबर ने अपने प्रसिद्ध सेनापति अरबखाँ को इन्हें पकड़ने के लिए भेजा। अमरसिंहजी में अफीम सेवन का बड़ा दुर्व्यसन था। सो जाने पर यदि कोई उन्हें जगा देता तो वे क्रुद्ध होकर उसे मार तक डालते थे। अरबखाँ जब इन्हें पकड़ने के लिए पहुँचा तो ये सोये हुए थे। इनको जगाने की किसी को हिम्मत नहीं हो रही थी। पद्मा नामकी वीर चारण-महिला ने निम्न-लिखित उद्बोधनगीत द्वारा उन्हें जगा कर सतर्क किया था—

सहर लूटतो सदा तूं देस करतो सरद
कहर नर पड़ी थारी कमाई
उजागर झाल खग जैतहर आभरण
अमर अकबर तणी फौज आई ॥ ॥
बीकहर सीहवर मार करतौ बसू
अभंग अरबुंद तो सीस आया
लाग गयणाग भुज झोल खग लँकाला
जाग हो जाग कलियाण जाया ॥ ॥
गोल भर सबल नर प्रकट अरि गाहणा
अरबखाँ आवियौ लाग असमाण
नियारो नींद कमधज अबै निडर नर
प्रबल हुय जैतहर दाख चौवाण ॥३॥
झुडै जमरण घमसाण मातौ जठै
साफ सुरताण धड़ बीच समरी
आपरी जका थह न दी भड़ अवर नैं
आप री जका थह रह्यो अमरी ॥४॥

ऊपर जिस पद्मा का उल्लेख किया गया है उसकी सगाई प्रसिद्ध कवि बारहठ शंकर से हुई थी। एक बार बारहठजी अपने नौकर चाकरों के साथ कहीं जाते हुए पद्मा के गाँव पहुँचे। पद्मा के पिताजी उस दिन वहाँ नहीं थे। ऊँट-घोड़ों पर सवार प्रतिष्ठित अतिथियों को जब घर पर आया देखा तो उनके

आतिथ्य सत्कार के लिए स्वयं पद्मा मर्दाने कपड़े पहन कर बाहर आगई और अतिथियों का यथोचित सत्कार किया । तत्पश्चात् विदा होकर जब वे गाँव से बाहर निकल कर जा रहे थे तो एक व्यक्ति ने उनके हुक्के की मनुहार की। प्रसंगवश बारहठजी ने कहा कि जिनसे हम मिलने आये थे वे तो मिले नहीं परन्तु उनके कुँवर बहुत समझदार हैं जिन्होने हम सबकी बड़ी आवभगत की। यह सुन कर उस व्यक्ति ने कहा कि हमारे ठाकुरों के तो एक बाईजी ही हैं, कुँवर तो कोई है ही नहीं। इस पर मत-भेद होने पर उस व्यक्ति ने कहा कि उन कुँवरजी का पद-चिह्न मुझे दिखला दो तो मैं पहचान जाऊँगा कि पद-चिह्न किसका है। यही किया गया और पद-चिह्न देखते ही वह व्यक्ति बोल उठा-"अरे, ये तो वांका पग बाई पद्मा रा"। पद्मा के पैर कुछ टेढ़े पड़ते थे। बारहठजी को जब निश्चय हो गया कि पुरुष-वेश में वह पद्मा ही थी तो उन्होंने नाराज होकर सगाई छोड़ दी । पद्मा को हार्दिक दुःख हुआ किन्तु एक बार जिसके साथ उसका संबन्ध स्थिर हो चुका था उसको छोड़ कर स्वप्न में भी वह दूसरे की कल्पना नहीं कर सकती थी । इसलिए उसने आजन्म कौमार्य व्रत का संकल्प कर लिया। पद्मा की प्रतिभा की खबर सर्वत्र फैल गई । जब बीकानेर यह खबर पहुँची तो वीर अमरसिंह ने उसे बुला लिया और तभी से वह उनके अंतःपुर में रहने लग गई थी।

राजपूताने में किसी संदेहास्पद बात का निश्चय होने पर या

कोई नई बात मालूम होने पर 'अरे, ये तो वांका पग बाई पद्मा रा'— ये शब्द कहावत की तरह प्रचलित हो गये।

(७०)

ठा० सा० खंगारसिंहजी लाडखानी (खोरे वाले) रतनसिंहजी के पुत्र और फतहसिंहजी के प्रपौत्र थे। खाचरियावास के सरदार इन्हीं में से हैं। एक बार उक्त ठाकुर साहब के पास एक बारहठजी आये। ठाकुर साहब ने उनकी बडी आवभगत की। बारहठजी के साथ उनका सेवक भी था। वे हुक्का पीने के आदी थे। पौ फटने से पहले ही बारहठजी ने हुक्का भरने के लिए नौकर को आवाज दी किन्तु नौकर जगा नहीं। नौकर के प्रमाद को देख कर ठाकुर साहब स्वयं हुक्का भर लाये किन्तु हुक्का भरने का अभ्यास न होने से वे यथावत् न भर सके। बारहठजी ने समझा, उनका नौकर ही हुक्का भर कर लाया है; अंधेरे में पहचान न सके। जब उन्होंने नली का छोर मुँह में लगा कर हुक्का गुड़गुड़ाया तो सदा का-सा आनन्द नहीं आया। बारहठ जी ने ठाकुर साहब को ही नौकर समझ कर उन्हें डाँट-डपट बतलाई और उन पर कोड़े जमा दिये! ठाकुर साहब ने असाधारण सहनशीलता का परिचय दिया, मुँह से एक शब्द न कहा और जाकर लेट गये। जब नौकर की आँख खुली तो उसने बारहठजी से कहा—हुक्का भर लाऊँ? बारहठजी नाराज होकर बोले—अभी कुछ देर पहले तो हुक्का भर कर सारा मजा किरकिरा कर दिया, अब दुबारा हुक्का भरने चला है! जब नौकर के मुख

से बारहठजी को वस्तुस्थिति का परिचय मिला तो ठाकुर साहब की प्रशंसा में उन्होंने यह दोहा कहा—

लाडाणी जस लूटियो, माडाणी जग मांय ।
कीरत हंदा कोरड़ा, जाता जुंगा न जाय ॥

अर्थात् लाडाणी ने संसार में जबरदस्ती यश लूट लिया; कीर्ति के ये कोड़े युगों तक नहीं जायँगे । इस दोहे के अतिरिक्त बारहठजी ने एक गीत भी कहा था जिसकी निम्नलिखित पंक्ति बहुधा सुनी जाती है—

खमैं तू कोरड़ा लाडखानी ।

अर्थात् हे लाडखानी ! तू ही है जो हमारे चाबुकों को सहन करता है ! ऐसी सहनशीलता भी धन्य है । कवि के गौरव की सुन्दर व्यंजना भी इस प्रवाद द्वारा हो जाती है ।

(७१)

कहा जाता है कि महाराणा राजसिंहजी ने एक बार बादशाह से सन्धि करने का निश्चय किया जिस पर जिलिया चारणवास के एक कम्मा नामक नाई ने महाराणा को निम्नलिखित छप्पय सुनाया जिसे सुन कर वे उदयपुर लौट आये:—

"अजे गंग खलहलै अजे प्रांजलै हुतासण
अजे सूर झलहलै अजे सात्रत इन्द्रासण ।

अजे धरणि ब्रह्मंड अजे फल फूल धरत्ती
अजे नाथ गोरक्ख अजे अह मात सकत्ती ।
पवन हिलोहल धू अचल बेद धरम वाराणसी
पतसाह हूंत चीतोड़पति राण मिलै किम राजसी ।"

अर्थात् अभी तक गंगा बह रही है, अभी तक अग्नि दाहकता है, अभी तक सूर्य ज्योतिर्मय है, इन्द्र का आसन अभी ज्यों का त्यों है, पृथ्वी और ब्रह्माण्ड भी अभी (अपनी सीमा पर) हैं, फल फूल अभी तक पृथ्वी पर वर्तमान हैं, अभी तक गोरखनाथ विद्यमान हैं और योगमाया ने अभी तक अपनी शक्ति धारण कर रखी है, पवन अभी गतिशील है, ध्रुव तारा अटल है, वेद, धर्म और काशी भी वर्तमान हैं, फिर चित्तौड़ का महाराणा राजसिंह बादशाह से क्योंकर मिलने लगा ?

एक हस्तलिखित प्रति में इस छप्पय की अवतारणा के रूप में लिखा हुआ मिलता है—'महाराणा राजसिंहजी दिल्ली सूं मेल विचारयो मालपुरै जाय डेरा हुवा जद कवित मालम कियो कोइ कवि नै जीं पर पाछा कूंच करया जिण आँटा रा कवित ।"

अर्थात् महाराणा राजसिंहजी ने दिल्ली से सुलह करने का इरादा किया । मालपुर जाकर डेरा डाल दिया । उस समय किसी कवि ने कवित्त सुनाया जिस पर महाराणा ने वापिस कूच कर दिया । उस घटना के कवित्त । प्राचीनों के कवित्त शब्द में छप्पय, सवैया आदि सभी का समावेश हो जाता है । उक्त

छप्पय के ऐतिहासिक तथ्य के विषय में चाहे जो कहा जाय, इतना निश्चित है कि काव्यगत मार्मिकता की दृष्टि से यह छप्पय बड़ा महत्त्वपूर्ण है । 'चन्द्र टरै सूरज टरै' भारतेन्दु का यह प्रसिद्ध दोहा भी अभिव्यंजना के चमत्कार की दृष्टि से इस छप्पय के समक्ष नहीं रखा जा सकता । 'पर्यायोक्त' की छटा ने छप्पय को चमका दिया है ।

(७२

शाहपुरा के उम्मेदसिंहजी का प्रण था कि जो उन्हें उम्मेद-सिंह के नाम से पुकारेगा उसे मृत्यु-दण्ड दिया जायगा । एक बारहठजी को जब किसी किसान से यह हाल मालूम हुआ तो उन्होंने कहा कि मैं महाराणा को उम्मेदसिंह के नाम से पुकारूँगा । किसान ने वादा किया कि यदि आप ऐसा कर सके तो मैं अपने बैलों की सुन्दर जोड़ी आपको भेंट कर दूँगा । बारहठजी महाराणा के दरबार में पहुँचे और उन्होंने महाराणा की प्रशंसा में निम्नलिखित पद्य कहे:—

गोला गावैं गीत, राग रिझावै राण नै ।
भारत रो भय भीत, आडो लड्यो उमेदिया ॥
घोड़ां पाखर घमघमै, भड़ां न पायो भेद ।
आज किसा गढ ऊपरै, आरण रच्यो उमेद ॥
मैं पूछूँ तोय सम्परा, रातो अंबर काय ।
भारत तणै उमेदिये, खाग झकोली मांय ॥

अर्थात् दास महाराणा की प्रशंसा में गीत गा रहे हैं और उनको अपने राग से रिझा रहे हैं। हे भारतसिंह के पुत्र उम्मेदसिंह ! तूने बड़ा विकराल रूप धारण किया और तू अच्छी तरह लड़ा। घोड़ों पर पाखर (लोहे की झूल जो लड़ाई के समय रक्षार्थ हाथी व घोड़े पर डाली जाती है) डाले जा रहे हैं किन्तु योद्धाओं को इस भेद का पता नहीं कि उम्मेदसिंह किस दुर्ग पर आक्रमण करने के लिए आज युद्ध की तैयारी कर रहे हैं।

हे सिप्रा नदी ! मैं तुझे पूछता हूँ कि आज तेरा जल लाल कैसे हो गया। मैं समझता हूँ कि भारतसिंह के पुत्र उम्मेदसिंह ने तेरे जल में अपनी खड्ग का प्रक्षालन किया है।

बारहठजी ने (उम्मेदसिंह तो दूर रहे) 'उमेदिया' और 'उमेद' का चारण-प्रथानुसार प्रयोग किया। किसान बड़ी उत्सुकता से देख रहा था कि महाराणा अब बारहठजी के साथ किस प्रकार पेश आते हैं। उक्त पद्यों को सुन कर जब महाराणा बारहठजी से गले मिले तो किसान के आश्चर्य की सीमा न रही। वह तुरन्त बोल उठा—क्या महाराणा ने मुझसे मेरे बैलों की जोड़ी हड़पवाने के लिए ही यह प्रण की विडम्बना रची थी ? महाराणा को जब सब हाल मालूम हुआ तो उन्होंने किसान को राजकीय खजाने से बैलों की जोड़ी के दाम दिलवाये और बारहठजी को पुष्कल द्रव्य पुरस्कार स्वरूप देकर विदा किया।

महाराणा ने कहा—बारहठजी कहने का जो ढंग जानते हैं—ऐसा ढंग किसी को आवे भी !

(७३)

भारत के वाइसराय लार्ड कर्जन ने दिल्ली में एक दरबार की आयोजना की जिसमें सम्मिलित होने के लिए सब नरेशों के पास फरमान भेजे गये। उदयपुर के तत्कालीन महाराणा फतहसिंहजी भी मेवाड़ से रवाना होकर दिल्ली के लिए चल पड़े। कोटा के श्री केसरीसिंहजी बारहठ ने इस अवसर पर १३ सोरठे बना कर महाराणा के पास भेजे जिनको पढ़ कर महाराणा का विचार बदल गया। उन १३ 'चेतावणी रा चूंगट्या' में से एक नीचे दिया जाता है—

पग पग भम्या पहाड़, धरा छाँड राख्यो धरम।
(ईसूं) महाराणा र मेवाड़, हिरदे बसिया हिन्द रै॥

अर्थात् पैदल ही पहाड़ों में भटकते रहे, पृथ्वी छोड़ कर धर्म की रक्षा की, इसलिए महाराणा और मेवाड़ ये दो शब्द हिन्दुस्तान के हृदय में बस गये हैं।

(७४)

जोधपुर के राव चन्द्रसेन ने कभी अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की किन्तु उनके पौत्र कर्मसेन ने जब जहाँगीर का आधिपत्य स्वीकार कर लिया तब एक दिन बादशाह ने उनको

अपने हाथी के हौदे के पीछे बिठलाया । कर्मसेन को चँवर ढुलाने का काम करना पड़ा । यह खबर जब कर्मसेन की माता के पास पहुँची तो उन्होंने पुत्र को अपना संदेश सुनाने के लिए एक चारण को भेजा । चारण ने प्रभावशाली शब्दों में कहा—

कम्मा उग्गरसेण रा तो जननी बलिहार ।
चमर न झल्ले साहरा, तू झल्ले तरवार ॥
कीधा कर करतार, क्रिरमर कारण करमसी ।
सह देखै संसार, चमर हलावस मुच्छी ॥

अर्थात् हे उग्रसेन के पुत्र कर्मसेन ! बलिहारी है तेरी माता की ! जिस शाह के सिर पर तुझे तलवार डुलानी थी; वहाँ चमर डुला रहा है । क्षत्रियों के हाथ तो विधाता ने तलवार धारण करने के लिए ही बनाये हैं—तुम्हारे चँवर डुलाने के कार्य को सारा संसार आज बड़ी कुतूहल भरी दृष्टि से देख रहा है !

कर्मसेन इन पद्यों को सुन कर चँवर फेंक हाथी पर से कूद पड़ा और तलवार हाथ में लेकर घोड़े पर सवार हो गया । बादशाह ने किसी तरह उसको शांत करते हुए कहा—यह मेरी ही भूल थी जो मैंने तुम्हारे जैसे वीर को यह काम सुपुर्द कर दिया था, तुम्हारे हाथ में तो तलवार ही शोभा पाती है ।

चारण की ओजस्विनी वाणी में कितनी शक्ति होती थी, यह देखते ही बनता है ।

(७५)

वीरों का तलवारों द्वारा शत्रुओं पर प्रहार करना तो सुना गया है किन्तु रावल पूंजाजी ने काली तीज के दिन बिजली पर जो कटारी चलाई उसकी कल्पना भी कितनी वैचित्र्यमयी (Romantic) है ! इस सम्बन्ध में निम्नलिखित गीत प्रसिद्ध है—

नमो भाल़ रा सूर गहलोत रावल़ नडर
उरड खत्रवाट पोरस उमाहै
काजली रमंतां ऊजली कटारी
बीजली ऊपरा तुहिज बाहै ॥१॥

लाय धर अंबर री दोय जाणै लड़ी
खडहडी दोय जाणै अड़ी खीज
कहर सरकूँज रावल जड़ी कटारी
बीज ऊपर पडी दसरी बीज ॥२॥

करै उछाह धमल़ मँगल़ कामणी
हूँस रलियामणी राग रँग होय
साँवणी तीज तिण दीह जड की सुजड
दामणी तणैं अधियामणी होय ॥३॥

अमैं धर पाट सूर छहुवाँ अवर भड
धमधमैं घाट गोलाँ जहीं धीज

कसी करद लैं घायल हुई कटारी
बादल धसी घायल हुई बीज ॥४॥

'बीज' डिंगल भाषा में तलवार का भी पर्यायवाची शब्द है। बिजली पर जब तलवार चलाई गई तो ऐसा जान पड़ा मानो दो अग्नियाँ लड़ पड़ी हों। बिजली यदि आसमान की आग है तो रावल पूंजाजी की तलवार पृथ्वी की आग है। बिजली जब गिरती है तो तुरन्त ही आसमान की ओर उठती हुई दिखलाई पड़ती है। यहाँ कवि ने हेतूत्प्रेक्षा की है कि मानो पूँजाजी की तलवार से घायल होकर बिजली बादल में धँस गई। इस प्रकार की उत्प्रेक्षा शौर्यातिशय की व्यंजक है और हेतूत्प्रेक्षा के कारण इस उक्ति में किसी प्रकार की अस्वाभाविकता नहीं रह गई है।

(७६)

बीकानेर के महाराज रायसिंह अपनी दानशीलता के लिए राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि शंकर नामक एक बारहठ ने अपनी काव्य-सुषमा से महाराज को मुग्ध कर लिया था। अपने मंत्री कर्मचन्द को महाराज की ओर से हुक्म दिया गया कि बारहठजी को राजकीय खजाने से एक करोड़ रुपया नगद दे दिया जाय। किन्तु 'दाता दे भंडारी को पेट फाटे' की प्रचलित लोकोक्ति के अनुसार मंत्री ने इस दान में अड़चन डालनी चाही। दस हजार थैलों में एक करोड़

रुपये भरवा दिये गये किन्तु मंत्री ने आग्रह किया कि बारहठजी को यह अतुल संपत्ति दी जाय, इसके पहले महाराज स्वयं अपनी आँखों से इसे देखलें। मंत्री का अनुमान था कि इतनी बड़ी धन-राशि को देख कर महाराज का विचार बदल जायगा और वे दान की रकम कम कर देंगे। महाराज मंत्री के भाव को ताड़ गये और बोले—ऐं, एक करोड़ क्या इतना ही होता है? मेरा तो अनुमान था कि एक करोड़ इससे अधिक होता होगा। बारहठजी को एक करोड़ के बदले सवा करोड़ दिया जाय। जबान का धनी सच्चा राजपूत अपने दिये हुए वचन को कभी वापिस नहीं लेता। दानी राजाओं की ओर से लाखपसाव तो चारणों को मिलते रहते थे, कोड़ पसाव भी कभी कभी सुनने में आ जाता था किन्तु नग़द सवा कोड़ पसाव का दान देकर रायसिंह ने ही अपनी अद्वितीय दानशीलता का परिचय दिया। डिंगल गीत की निम्नाङ्कित पंक्तियों में इसी का उल्लेख हुआ है—

"सउ लाखां ऊपरि नवसहसा
लाख पचीस ज दीध हिलोलि।"

(५७)

जोधपुर के राजा श्री उदयसिंह और चारण महकरण—ये दोनों बदन के भारी थे। इसलिए अकबर बादशाह श्री उदय-सिंह को 'मोटा राजा' तथा महकरण चारण को 'जड्डा चारण' कहा करता था। अकबर के दरबार में जड्डा चारण की बड़ी

मान-प्रतिष्ठा थी। एक बार शाही दरबार में वह अपने भरकम शरीर के कारण बहुत समय तक खड़ा न रह इसलिए विवश होकर बैठ गया। ड्योढीदार जब उसे लगा तब उसने बादशाह को यह दोहा सुनाया—

पगां न बल, पतशाह, जीभां जसबोलां तणौ।
अब जस अकबरकाह, बैठा बैठा बोलसां॥

अर्थात् हे बादशाह! चारणों का बल तो जिह्वा व होता है, पैरों का बल नहीं। इसलिए हम तो बैठे बैठे ही अ का गुणगान करेंगे। चारण की इस उक्ति से प्रसन्न बादशाह ने हुक्म फरमाया कि जड्डा को बैठे रहने की इ है। जड्डा की प्रशंसा में कहा हुआ रहीम का यह क दोहा राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है—

धर जड्डी अंबर जडा, जड्डा चारण जोय।
जड्डा नाम अलाहदा, अवर न जड्डा कोय॥

अर्थात् पृथ्वी तथा आसमान असीम है और असीम चारण की कवित्व शक्ति। अनन्त नाम है परमात्मा का कोई अनंत नहीं।

(७८)

'वेलि क्रिसन रुकमणी री' के रचयिता राठौड़राज पृ राजस्थान के सुप्रसिद्ध कवि थे। अकबर के दरबार में अ

बड़ा सम्मान था। प्रवाद प्रचलित है कि उन्होंने एक छप्पय छन्द लिख कर गाय के गले में बाँध दिया था। गाय चलती फिरती बादशाही महल के नीचे जा पहुँची और वहाँ जो अदालत की साँकल लटक रही थी उससे अपना सींग सहलाने लगी। साँकल के हिलने से अंदर जो घंटी बजी तो बादशाह यह समझ कर कि कोई फरियादी आया है बाहर निकल आये। गाय के गले से कागज़ निकाल कर जो निम्नलिखित छप्पय पढ़ा तो हुक्म दिया कि भविष्य में गोवध न हुआ करे—

अधर धरत तृण मुक्ख, ताहि कोऊ नहीं मारत।
सो मैं निस दिन चरत बैन दुर्बल उचारत॥
सदा खीर घृत भरत, मोर सुत पृथ्वी बसावत।
कहा तुरकन को कटू कहा हिन्दुन मधु पावत॥
इस तगार पन्ही हमही, गलो कटावन हम दिये।
पुकार अकब्बर साह से, कहा खून हमने किये॥ *

(७६)

एक बार महाराणा प्रताप शत्रु-सेना द्वारा इस प्रकार घेर लिये गये कि उनकी जान जोखम में पड़ गई। इस अवसर पर महाराणा के राजपूत ही चिन्तित नहीं थे, शक्तिसिंह तक जो महाराणा को छोड़ कर शत्रुओं की ओर चले गये थे महाराणा

---

* राजरसनामृत (मुँशी देवीप्रसाद) पृ० ४४

की जीवन-रक्षा के लिए आतुर हो उठे थे। झाला मानसिंह ने इस मौके पर बड़ी स्वामि-भक्ति का परिचय दिया। उन्होंने उसी क्षण महाराणा प्रताप के शिरोभूषण, छत्र और दूसरे राजसी चिन्हों को उनके शरीर से हटाकर अपने पर कर लिये और महाराणा की बलवती इच्छा के विरुद्ध उन्हें युद्ध-भूमि से लौटने पर विवश किया। शाही सेना ने झाला मान को ही महाराणा प्रताप समझ लिया और चारों ओर से उन पर प्रबल आक्रमण किया। जब तक शरीर में रक्त की एक बूँद भी शेष रही, झाला मान ने शत्रुओं को रोके रखा। ऐसा स्वामि-भक्त योद्धा किसकी प्रशंसा का पात्र न होगा! राजस्थान के एक कवि ने ठीक ही कहा है—

आधी गादी बेदलो आधी गादी रांण।
सादड़ी सुलतांण झालो दूसरो दीवांण॥

(८०)

लोकापवाद के डर से जब रामचन्द्रजी ने सीता को वनवास दे दिया था, उस समय वह गर्भवती थी। वन में ही लव का जन्म हुआ। कहा जाता है कि एक बार वह वाल्मीकि ऋषि के संरक्षण में लव को छोड़ कर नहाने के लिए गई हुई थी। ऋषि कुछ समय पश्चात् ध्यान-मग्न हो गये। सीता ने लौट कर देखा कि ऋषि तो ध्यान-मग्न हैं, इसलिए उन्हें बिना सूचित किये ही वह लव को लेकर चली गई। ऋषि की समाधि जब

खुली तो वे क्या देखते हैं कि वहाँ लव का नाम निशान नहीं है। इस डर से कि सीता न जानें कितने उपालंभ देगी, ऋषि ने डाभ (दर्भ) से दूसरे लव की सृष्टि कर डाली और सीता के लौटने पर बच्चे को उसे सौंप दिया। राजपूतों के डाभी कुल का नामकरण, कहते हैं, इसी डाभ को लेकर हुआ। इस संबन्ध में प्रवाद के रूप में प्रचलित निम्नलिखित पद्यों को जिये:—

वली सती वनवास देव श्रीरामे दीधो
सीताजी चालियां कनखल वासो कीधो
पूरा मासज पेट हुए कूंवर लव आयो
असो कुंवर अवतार जसो तथ पुन्नम जायो
सुंपे कुंवर रखियां सती, सीता धुवरान चालियां
वनंचरी देख पाछां वलां हेत करे तद लवलियां ॥१॥

अर्थात् फिर देव श्रीराम ने सती सीता को वनवास दे दिय
सीताजी ने चल कर वन में डेरा डाला। पूरे महीने होने
सीता की कोख से लव का जन्म हुआ। ऐसे कुंवर
अवतार हुआ मानो वह पूर्णिमा की तिथि जैसा हो, पूर्ण
जैसा सुन्दर। ऋषि को सौंप कर सीता स्नानार्थ चली गई
वनचरों को देख कर फिर लौट आई और प्रेम से ल
(गोद में) ले लिया।

पल खोली रुखि देव तहां वालक नहिं दीसै ।
मारयो कोइ मंझार सींह सीयाल क सस्सै ॥
धरे रखी हर ध्यान डाभ पूतलो बनायो ।
वचारे जजर वेद डाभ रख नाम देरायो ॥
ओथ वहे आवियां वाल जम दीसै वीजो ॥
वात कुण तेडवे मात कह सगती तेरो ॥२॥

ऋषि-देव की पलकें खुलीं तो वहां बालक नहीं दिखलाई पड़ा। उन्होंने सोचा—किसी मार्जार, सिंह, शृगाल अथवा खरगोश ने बालक को मार डाला है! उन्होंने ध्यान धर कर डाभ का पुतला बनाया और यजुर्वेद को विचार कर उस पुतले का डाभ नाम रख दिया। सीता जब लौट कर आई तो उसे दूसरा बालक जैसा दिखलाई पड़ा।

एक अन्य छप्पय में यह भी कहा गया है—

"समसर पंदर चोरासीए मझा जोध पेदास हुओ"

अर्थात उस युग के संवत १५८४ में इस महायोद्धा डाभ का जन्म हुआ (जिससे राजपूतों का डाभी कुल चला।) राजपूतों के ३६ कुलों में डाभी कुल की भी गणना की जाती है। ध्यान देने की बात है कि किस प्रकार संवत तक देकर इस प्रवाद को ऐतिहासिक तथ्य का रूप दिया गया है। यह सब विद्वानों की गवेषणा का विषय है।

(८१)

उमादे जैसलमेर के रावल लूणकरणजी की पुत्री थी । ज्यों ज्यों वह बड़ी हुई, उसके सौन्दर्य की प्रशंसा राजस्थान में सर्वत्र फैल गई । जोधपुर के राव मालदेव उमादे से विवाह करना चाहते थे किन्तु कहते हैं कि उनके मूंछ न होने से विवाह में बड़ी अड़चन पड़ रही थी । उन्होंने शंकर की उपासना की जिससे प्रसन्न होकर आशुतोष भगवान ने स्वप्न में राजा को दर्शन दिये । शिव ने वरदान माँगने के लिए कहा तो राव मालदेव बोले कि मेरे बड़ी बड़ी मूंछें आजायँ जिससे राजपूत जाति में मैं मुँह दिखलाने योग्य हो जाऊँ और सगर्व अपना सिर ऊँचा कर सकूँ । महादेव के 'तथास्तु' कहते ही राजा के बड़ी बड़ी मूंछें आगईं जिससे इतिहास में वे 'मूंछों वाले मालदेव' के नाम से विख्यात हुए । अब जैसलमेर के भाटी राजा को अपनी लड़की का विवाह राव मालदेव से करने में कोई आपत्ति न थी । बड़ी धूमधाम से विवाह हुआ । विवाह के बाद मालदेव रंग-महल में वधू की प्रतीक्षा करने लगे । जब देर होने लगी तो पति की ओर से सँदेशा भेजा गया । पत्नी ने उत्तर में कहलवाया कि अभी मैं अपने सम्बन्धियों से मिल रही हूँ, इसलिए कुछ समय लग जायगा । दूसरी बार सँदेशा मिलने पर उमादे ने उत्तर दिया कि आवश्यक साज-सज्जा के बाद मैं अभी आ रही हूँ । तीसरी बार सँदेशा मिलने पर उमादे ने अपनी दासी के हाथ कहला

भेजा कि एक मिनट के बाद मैं महल में पहुँच रही हूँ । उमादे जब महल में पहुँची तो दासी के साथ राजा को आलिंगन करते देख कर आगबबूला हो उठी । जो थाल आरती के लिए उसने सजाया था उसे औंधा कर फेंक दिया और राव मालदेव से हमेशा के लिए रूठ गई जिससे वह राजस्थान के इतिहास में रूठी रानी के नाम से प्रसिद्ध हुई । "वि० सं० १५९६ में एक बार रावजी की आज्ञा से बारठ ईश्वरदास के अत्यधिक अनुनय-विनय करने पर उमादे का मान कुछ नरम हो गया था । परन्तु उसी अवसर पर रावजी को बीकानेर की चढ़ाई का प्रबन्ध करने के लिए जोधपुर आना पड़ा । अतः वह बात वहीं रुक गई । इसके बाद वि० सं० १५९९ में जब रावजी को अपने विरुद्ध शेरशाह की चढ़ाई की सूचना मिली, तब उन्होंने ईश्वरदास को लिखा कि तुम उमादे को हिफ़ाजत के साथ अजमेर से जोधपुर ले आओ और वहाँ के किले में शीघ्र ही युद्ध-सामग्री एकत्रित की जाने का प्रबन्ध करवा दो । यह समाचार सुन उमादे ने ईश्वर-दास से कहा कि शत्रु का आगमन जान लेने के बाद मेरा किला छोड़ कर चला जाना सरासर अनुचित होगा । इससे मेरे दोनों कुलों अर्थात् नैहर और ससुराल पर कलंक लगेगा । अतः आप रावजी को लिखदें कि वह यहाँ का सब प्रबन्ध मुझी पर छोड़ दें । वह यह भी विश्वास रखें कि शत्रु का आक्रमण होने पर मैं राना साँगा की रानी हाड़ी कर्मवती के समान अग्नि में प्रवेश न कर शत्रु को मार भगाऊँगी और यदि इसमें सफल न हुई तो

वीर क्षत्रियाणी की तरह सम्मुख रण में प्रवृत्त होकर प्राण-त्याग करूँगी। जब रावजी को पत्र द्वारा इस बात की सूचना मिली तब उन्होंने ईश्वरदास को लिखा कि तुम हमारी तरफ से रानी को कहदो कि अजमेर में तो हम स्वयं शेरशाह से लड़ेंगे। इसलिए वहाँ का प्रबन्ध तो हमारे ही हाथ में रहना उचित होगा; हाँ, जोधपुर के किले का प्रबन्ध हम तुम्हें सौंपते हैं। अतः तुम शीघ्र ही यहाँ चली आओ। रानी ने भी अपने पति की इस आज्ञा को मान लिया और अजमेर का क़िला रावजी के सेनापतियों को सौंप वह जोधपुर की तरफ रवाना हो गई। परन्तु जैसे ही यह समाचार रावजी की अन्य रानियों को मिला, वैसे ही वे सौतिया डाह से घबरा गईं। अतः उन्होंने उसके जोधपुर आगमन में बाधा डालने के लिए-बारठ आसा को रवाना किया। यह आसा बारठ ईश्वरदास का चचा था। रानियों ने इसे बहुत कुछ लालच देकर इस कार्य के लिये तैयार किया था।

इसके बाद जिस समय उमादे की सवारी जोधपुर से १५ कोस पूर्व के कोसाना गाँव में पहुँची, उस समय आसा भी उसकी पीनस के पास जा पहुँचा। संयोगवश ईश्वरदास उस समय कहीं इधर उधर गया हुआ था। इससे मौक़ा पाकर आसा ने यह दोहा ज़ोर से पढ़ा—

"मान रखे तो पीव तज, पीव रखे तज मान।
दोय गयंद न बंध ही, एकण खंभे ठाँण॥"

अर्थात् हे गोविन्द ! गरुड़ पर चढ़ो, हे शंकर ! बैल पर चढ़ कर आओ, हे इन्द्र ! इस समय प्रबल ऐरावत की पीठ पर चढ़ो, हे वृद्ध देव (ब्रह्मा) हंस पर चढ़ो, हे देवी ! सिंह की सवारी करो, हे सूर्य ! अपने सप्ताश्व रथ पर चढ़ो, हे अप्सरा ! विमान पर चढ़ो—आज इतने देवता आओ क्योंकि स्नान करके सूर्य के सम्मुख ध्रुव के समान सच्ची आन बान वाली उमा सती चिता पर चढ़ती है ॥६॥

सझ सोले सिणगार, सतव्रत अँग अँग साहे ।
अरकबार मुख ऊग, नीर गंगाजल नाहे ।
चीर पहर अस चढ़े केस वेणी सिर खुल्ले ।
देती परदक्खणा, हंसगत राणी हल्ले ।
सुर भुवन पैंस पहुंता सरग, साम तणो मन रंजियो ।
रूसणो मालदे राव सूं, भटियाणी इम भंजियो ॥७॥

अर्थात सोलह शृंगार करके सती के व्रत को अंग अंग में लिये हुए जिसके मुख मे मानो बारह सूर्य उगे हैं ऐसी उमादे ने गंगाजल से स्नान किया। चीर पहन, घोड़े पर सवार हो, बाल और चोटी खुली रख प्रदक्षिणा दे, हंस की चाल से चल कर रानी स्वर्ग में पहुंची। स्वामी का मन प्रसन्न हुआ। इस प्रकार उमादे ने राव मालदेव से अपना रूठना दूर किया ॥७॥

हंस गमणा राय रमणा, निरम्मल म्रगाँ नेणी ।
कुन्दन देह रूप आगे, बदन चन्दा आद वेणी ।

पतवरता पदमणी, सील सुन्दर सतवन्ती ।
लछण महा लच्छिमी, जिसी गंगा परवत्ती ।
वड़ सती माल चाढ़ल वड़म, जीव अंग करती जुवा ।
झेलती झाल आठूँ दिसा, हार कण्ठ जू जू हुआ ॥८॥

अर्थात् हंस के समान चाल वाली, राव मालदेव में अनुरक्त, मृग के से निर्मल नेत्रवाली, मीठे वचन बोलने वाली, चन्द्र-वदनी, सर्प की सी वेणी वाली, पतिव्रता पदुमिनी, सुशीला, सुन्दर सत्यवती, लक्षणों में महालक्ष्मी, गंगा और पार्वती जैसी बड़ी सती उमादे ने मालदेव को बड़प्पन चढ़ाने के लिए जीव को अंग से अलग किया, आठों दिशा की ज्वाला झेलते हुए उसके हार और कण्ठ जुदा जुदा हो गये ॥८॥

सार सचील सिनान दान सोव्रन विप्रां दे ।
धारे चित निज धर्म, पखां ऊजला करे वे ।
मेट मोह मृतलोक, काठ भक्खण मझ पेसै ।
महाझाल मंगाल, मांहि सिद्धासण वैसै ।
करकाल दोप निकलँक करण, तवजे तिण वारां तणो ।
सुरभवन पधारे साम सूं, राणी भांगे रूसणो ॥६॥

अर्थात् वस्त्र सहित स्नान करके, ब्राह्मणों को सोने का दान देकर निज धर्म का पालन किया. दोनों पक्ष (ससुराल और पीहर) उज्ज्वल करने के लिये संसार का मोह छोड़ कर अग्नि में घुसी और महाज्वाला प्रज्वलित करके उसमें सिद्धों का-सा

आसन लगा कर शरीर का दोष दूर किया। उस समय का वर्णन किया जाता है कि रानी ने स्वर्ग लोक में पधार कर अपने स्वामी से रूठना दूर किया ॥९॥

भंवर भ्रूह पर जाल, जाल जंघा रंभातर।
कनक पयोधर कुम्भ, राख कीया चढ़ि जमहर।
चंपकली निरमली, भखे झाला दावानल।
बांहा नाल मुणाल, कंठ होमे सानू जल।
विधु वदन केस कोमल तकां, दहवे जेम सहस्सफण।
वालिया सती ऊमां त्रिनैं, अधर त्रिंब दाड़म दसण ॥१०॥

अर्थात भंवों के भंवरे जला कर जांघों के रंभातरु (केले) जलाये, स्वर्ण कुंभ रूपी स्तनों को जला कर खाक कर दिया। निर्मल योनि का भी दावानल की ज्वाला ने भक्षण कर डाला। कमल-नाल जैसी भुजाओं और कैलास-शिखर जैसे उज्ज्वल कंठों को अग्नि के हवाले कर दिया। चंद्रमा-से मुख और वासुकि नाग जैसे कोमल केश जला दिये। उमा सती ने बिंबा फल जैसे होंठ और अनार जैसे दाँतों को जला कर भस्म कर दिया।

होम हंसगत चाल, होम सारंगह लोचण।
सुन्दर होम सरीर, होम सोवन्न सहासन।
कंठ होम कोयल, नाक होमे चल भैंवर।
?? होम सिर भंवर, नीर होमे पाटंवर।

बत्तीस लछण गुण रूप बहु, त्यारां अंतर दाख तण ।
होमतां त्रिहु भेला हुवा, सील माण लज्जा सघण ॥११॥

अर्थात् हंस के समान चाल को होम कर मृग-समान अपने नेत्रों को आग में होम दिया; सुन्दर शरीर होम डाला, सुन्दर महावर्ण होम दिया। कोयल का सा कंठ होम दिया, हाथी की सी चाल वाला शरीर होम दिया। भौंरे जैसी दोनों भवें होम दीं, रेशम के चीर भी अग्नि के हवाले कर दिये। ३२ लक्षण, गुण तथा अपार रूप को होमते समय शील, मान और सघन लज्जा—ये तीनों भी इकट्ठे हो गये थे ॥११॥

नमे वंदि नह किया, नमे छन्दो नह कीधो ।
नमे न लियो सुहाग, नमे आदर नह लीधो ।
नमे न कीधो नेह, नमे संतोष न पायो ।
नमे न लागी पाय, माण एकोज उपायो ।
मेलाय न सकियो मालदे, जुग सह जीतो पुरुष जिण ।
तद सघर माण ऊमां तणो, रहियो जेम फणेन्द्रमिण ॥१२॥

अर्थात् झुक कर नमस्कार नहीं किया, झुक कर अधीनता [स्वी]कार नहीं की; झुक कर सुहाग नहीं लिया और न झुक कर [आ]दर लिया। झुक कर प्रेम नहीं किया और न झुक कर संतोष [पा]या। झुक कर पाँवों से न लगी। उसने जो मान किया था [उस]को जगद्विजयी मालदेव भी नहीं छुड़ा सका। तब ऊमा का [अटल] मान वासुकि नाग की मणि की तरह ऊँचा रहा ॥१२॥

धरा माहे धिन धिन्न, वंस धिन सोम बखाणो ।
जात धिनों जादम्म, सहर धिन धिन जैसाणो ।
धिन पित मात धिनों, जिकां घर देवी जनमिय ।
गढ़ धिन धिन गोरहर, राय आँगण उण रम्मिय ।
धिन धिन ऊमादे धीवड़ी, बड़पण सींग बधाड़िया ।
सासरो पीहर मा माण सहु, तीन पखांनू तारिया ॥२॥

माट की धरती धन्य है, धन्य कहना चाहिए चंद्रवंश को, यादव जाति को धन्य है, जैसलमेर शहर धन्य है; धन्य है यह माता, धन्य है यह पिता जिनके घर देवी जन्मी। गोरहर का गढ़ धन्य है जिसके आँगन में यह खेली है। धन्य है ऐसी पुत्री ऊमादे को जिसने बड़प्पन का सींग बढ़ाया और ससुराल, पीहर और ननसाल तीनों घरानों को तारा ॥२॥

घुरिया ढोल त्रिघाय, गहरघण घोर नगारां ।
अमरवृन्द आनन्द, समर हर हरमुख सारां ।
ऊपर पहप बरसतां, चढ़ी चढ़ बैंस बिमाणां ।
गई धाम बैकुण्ठ, कीन करण हूं ठिकाणां ।
पटराणीर आप [illegible] पटां, सुगन्दरि रूप समान रे ।
गुणवंत बड़ल राय मान सूं, सिरिया महल सुजान रे ॥३॥

अर्थात तीन ढंकों से ढोल बजे, घनघोर नौबतें बजीं, देवताओं में आनंद हुआ। सब मुँह से हर हर करने लगे, फूलों की वर्षा होते हुए वह विमानों पर चढ़ कर चली, बैकुण्ठ में जाकर

धसने पर उसकी कीर्त्ति की कथा स्थान स्थान पर होने लगी। मस्त हाथी के समान, खुले केशों से शक्ति के रूप में हँसते हुए मुक्ति के महल में राव मालदेव से जाकर मिली ॥३॥

दोहा

ऊमां सतव्रत आगले, भई सती भटियाण ।
उभे दुरँग उजवालिया, जोधाणे जैंसाण ॥

अर्थात् उमादे ने सती होकर जोधपुर और जैसलमेर दोनों लों को उज्ज्वल किया । *

(८२)

फूलजी ने अपने पुत्र लाखा को किसी कारणवश वनवास दिया था। बाद में पिता अपने पुत्र को तलाश करता रहा। ब फूलजी ने नदी के सामने लाखा के दान की बड़ी प्रशंसा की और लाखा का पता पूछा तो नदी ने उत्तर दिया—

लाखै सिरखा लख गया, अनड़ सरीखा आठ ।
हेम हिड़ाऊ सारखो, वलु न आयो बाट ।
लालां करया बिछावणा, हीराँ बाँधी पाज ।
कांटै मोती पो गयो, हेम गरीब निवाज ॥

अर्थात् लाखा जैसे तो लाखों चले गये, जाम ऊनड़ जैसे आठ चले गये किन्तु हेम हिड़ाऊ जैसा कोई भी फिर इस मार्ग

---

* रूठी रानी (मुंशी देवीप्रसादजी) पृ० ५०-६०

से नहीं आया। गरीबनिवाज हेम ने तो लालों के बिस्तर बिछा दिये, हीरों से पाल बाँध दी और काँटे काँटे में मोती पिरो दिये। ऊपर के दोहों में लाखा, जाम ऊनड़ तथा हेम की दान-धीरता का उल्लेख हुआ है। दोहों के मर्म को समझने के लिए संक्षेप में उनकी अन्तर्गत कथाओं को जान लेना आवश्यक है। कहते हैं कि एक बार जरार नदी के तट पर ज्येष्ठ मास में लाखा फूलाणी की फौज पहुँची। अचानक वर्षा होने से अमीरों के शाल दुशाले, रेशमी वस्त्र आदि सब भीग गये। नदी के जो झाड़ थे उन पर सबने अपने अपने वस्त्र सुखा दिये। लाखा खड़ा खड़ा यह सुन्दर दृश्य देख रहा था। जब सब अपने अपने सूखे वस्त्र झाड़ों पर से उतारने लगे तो लाखा ने कहा कि झाड़ों पर वस्त्रों को ऐसे ही रहने दो, नदी बड़ी सुन्दर जान पड़ती है। मैं तुम सबको नये वस्त्र दिलवा दूँगा। इसीलिए निम्नलिखित पंक्ति कहावत के रूप में सुनी जाती है—

लाखै वन ओढाड़ियां, पीली पांतरियांह।

जाम ऊनड़

एक बार सिंध के स्वामी जाम ऊनड़ के मन में किसी सत्पात्र को बड़ा दान देने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसने कविराज साँवल सुध को अपनी राजधानी में बुलाया और उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। साँवल ने जाम के सामने जब लाखा फूलाणी के दान की बड़ी प्रशंसा की तो उसे अच्छा न लगा

और उसने कहा—मेरे दान की प्रशंसा क्यों नहीं करते ? साँवल ने कहा कि आप लाखा जैसे दातार हैं कहाँ जो आपकी प्रशंसा करूँ ? यदि आप इतने बड़े दातार हैं तो अपना सारा राज्य किसी को क्यों नहीं दे देते ? कहते हैं, जाम ऊनड़ ने कविराज को अपना राजसिंहासन सौंप दिया था ।

जरार नदी के किनारे भाद्रपद के महीने में भैंसें घास चर रही थीं । चारणों के लड़के बंशी बजा रहे थे । ऐसे समय जाम ऊनड़ इधर से आ निकला । मानव, प्रकृति और पशु तीनों का सुन्दर सम्मेलन देख कर वह उल्लसित हो उठा और उसने हुक्म दिया कि नदी के पास की यह जमीन आनन्दोल्लास के लिए सुरक्षित रखी जाय । राज्य का इस पर कोई अधिकार नहीं रहेगा ।

हेमहिड़ाऊ

इसी जरार नदी के समीप एक बार हेमहिड़ाऊ नामक बन-जारे की ५०० बालद निकलीं । ३०० बैलों पर सच्चे मोती लदे हुए थे । नदी पार करता हुआ एक बैल जब ठीक बीचों बीच पहुँचा तो रस्सी खुल गई और नदी के जल में मोतियों का ढेर सिल कर बहने लगा । वहाँ रंग बिरंगी मछलियाँ दौड़ कर इकट्ठी हो गईं । बड़ा मोहक दृश्य था—नदी का निर्मल जल, मुँह में सच्चे मोती लिये हुए रंग बिरंगी मछलियाँ और सूर्य की ज्योतिर्मयी रश्मियाँ ! इस सुन्दर दृश्य से मुग्ध होकर हेमहिड़ाऊ

ने हुक्म दिया कि ३०० बैलों के सब मोती नदी के निर्मल जल में डाल दिये जायँ। ऐसा सुहावना दृश्य फिर कब देखने को मिलेगा ?

इस प्रकार लाखा, जाम ऊनड़ तथा हेमहिड़ाऊ की दान-शीलता का संक्षिप्त वर्णन ऊपर किया गया है। नदी के उत्तर को सुन कर फूलाजी वापिस चले गये। लाखा ने यह प्रण कर रखा था कि जो मुझे यह कहेगा कि फूलजी की मृत्यु हो गई उसकी पीठ में से कलेजा निकलवा लूँगा। कालान्तर में जब फूलजी की मृत्यु हो गई तो किसी की भी हिम्मत नहीं हो रही थी कि वह लाखा के सामने उसके पिता फूलजी की मृत्यु का समाचार सुना सके। एक जोगी ने इस काम का बीड़ा उठाया। उसने सारंगी की ध्वनि में कहा—

"फूलाणी विन सिंधड़ी, सूनी दीसै आज।"

लाखा ने कहा—यह कौन बोल रहा है ? जोगी ने उत्तर दिया—सारंगी। किवदन्ती है कि सारगी पहले पोली नहीं थी, उसी दिन से पोली हुई। लाखा ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर दिखाया।

(८३)

सांगड़ा नामक किसी सोरठी राजा की माँ का स्वर्गवास हो गया था। सब सरदारों ने राज-माता के शोक में अपनी मूँछें

मुँड़वाई किन्तु मुंजालदे नामक एक सरदार ने मुछ मुँड़वाने से साफ़ इन्कार कर दिया। किसी ने पूछा—मुंजालदे, क्या दो सिर हैं जो मूँछ नहीं मुँड़वाते ? मुंजालदे ने कहा-"कुछ भी हो जाय, मैं मूँछ नहीं मुँड़वा सकता क्योंकि सांगड़ा की माता जब कँवारी थी तब मेरे साथ उसकी मँगनी की बातचीत हुई थी !" राजा के पास जब यह खबर पहुँची तो उसने हुक्म दिया कि मुंजालदे को मूँछ मुँड़वानी ही होगी। किन्तु मुंजालदे भी अपनी हठ का पक्का ठहरा। उसनें कहा—धड़ से सिर अलग हो जाय किन्तु यह बात नहीं हो सकती। सांगड़ा अपनी बड़ी सेना ले आया और मुंजालदे पर धावा बोल दिया। छोटे-से गाँव का स्वामी मुंजालदे अपना बचाव न कर सका। वीरता से युद्ध करते हुए उसने अपने प्राण त्याग दिये किन्तु फिर भी उसकी काया ऐसी जान पड़ती थी मानो जीवनी शक्ति वैसे ही बनी है; मूँछें तो भौंवों तक तनी हुई थीं। "तो भी सो धक-कंतरी भौंवां मूँछ मिलाय।" (सतसई.) मुंजालदे के शव पर खड़े होकर सांगड़ा ने तलवार खैंची और कहा—कहते न थे कि मूँछ नहीं मुँड़ाऊँगा ? यह कह कर उसने अपनी तलवार से मुंजालदे की मूँछ काटना शुरू किया। एक चारण पास ही खड़ा था। यह दृश्य उससे न देखा गया। उसने निम्नलिखित 'विसहर' कहा—

जीतो कोइ जुड़ियो नहीं, बाथर बीजी बार।
सांग समारणहार, मूंछ थारी मुंजालदे॥

अर्थात् हे मुंजालदे ! तू हजाम की तलाश में था किन्तु तु
कोई मिला न था; पर आज देख तो सही, यह सांग तुम्ह
मूँछें सँवार रहा है !

यह सुनते ही सांगड़ा ठहर गया । एक तरफ की मूँछ
वह काट चुका था, दूसरी ओर की मूँछ और सांगड़े
तलवार ज्यों की त्यों रह गई !

नमस्कार है कवि की इस व्यंग्य-भरी वाणी को !

(८४)

राव कल्लाजी मारवाड़ के राव मालदेव के पौत्र थे । अक
ने कल्लाजी को जीते जी पकड़ लाने के लिये सिवाणे सेना भेज
राव मालदेव ने कल्लाजी के पिता रायमल को सिवाणे
जागीर दी थी । जब किला फतह न हो सका तो बादशाह
दूसरी सेना और भेजी । कल्लाजी के नाना सिरोही के चौ
वंशीय राव सुरताण की इच्छा थी कि उनका दौहित्र किसी
अकबर के संघप में न आवे । इसलिए उन्होंने दूदाजी आ
को कल्लाजी के पास समझाने के लिए भेजा । बारहठजी ने अ
वाक्चातुर्य से एक बार तो कल्लाजी को किला छोड़ कर च
के लिए राजी कर लिया किन्तु दूदाजी ने यह कार्य अनिच्छ
किया था, इसलिए उनके मुख से गीत की यह पंक्ति निकल प

---

* श्री झवेरचंदजी मेघाणी के एक लेखांश से संकलित

खींपाँ तणा पुराणा खोलड़ हिये न उतरिया हरपाल ।

अर्थात जैसलमेर के भाटी राजपूत हरपाल पर जब जसलमेर की फौज चढ़ आई थी तब उसने अपना कच्चा फूस का घर भी नहीं छोड़ा था ।

यह सुन कर कल्लाजी ने कहा कि बारहठजी, फिर आप ही मुझ से यह कैसे आशा रखते हैं कि मैं सिवाणे के किले को छोड़ कर क्षत्रियत्व का उल्लङ्घन करूँगा ? कल्लाजी बड़ी वीरता से शाही सेना के विरुद्ध लड़ कर काम आये किन्तु बादशाह उनको जीते जी पकड़ न सका ।

(८५)

जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंहजी की मृत्यु के बाद राठौड़ वीर दुर्गादास ने उनके पुत्र अजीतसिंह की रक्षा के लिए जिस स्वामि-भक्ति और वीरता का असाधारण परिचय दिया उसे इतिहास के पाठक भली भाँति जानते हैं । दुर्गादास के संबन्ध में निम्नलिखित कहावती दोहा राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है:—

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा दुर्गादास ।
बाँध मुंडासा राखियो, बिण खंभे आकास ॥

अजीतसिंह जब तक नाबालिग थे, दुर्गादास ने ही मारवाड़ की रक्षा की थी । 'बिण खंभे आकास' द्वारा इसी की ओर संकेत जान पड़ता है ।

(८६)

एक बार नवानगर के रावल जाम के दरबार में एक युवक कवि ने आकर इस ढग से अपनी कविता पढ़ी कि श्रोतागण मुग्ध हो गये किन्तु राजपंडित श्री पीतांबर भट्ट ने अपना सिर हिला दिया जिससे जाम को यह संदेह हो गया कि कविता दोषपूर्ण है। फलतः कवि का उतना सत्कार न हुआ जितना होना चाहिए था। इसलिए कवि प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर हाथ में तलवार ले पीतांबर का वध करने के लिए रात्रि में उनके घर पहुँचा और तुलसी थाँवले की ओट में छिप रहा। इस अवसर पर पीताम्बर अपनी स्त्री से कह रहे थे कि प्रिये! तुम्हें क्या बताऊँ, आज तो राज-दरबार में एक ऐसा कवि-रत्न आया जिसने अपनी कविता, विद्वत्ता एवं सुमधुर कण्ठ से समस्त राज-सभा को मंत्र-मुग्ध-सा कर दिया परन्तु मैंने यह सोच कर उस समय अपना सिर हिला दिया कि यदि यह कवि सामान्य मानव की प्रशंसा न करके कहीं भगवान के गुण-वर्णन में अपनी शक्ति का उपयोग करे तो उसका कल्याण हो जाय! यह सुनते ही अवसर की प्रतीक्षा में छिप कर बैठे हुए कवि का क्रोध एकदम शान्त हो गया और पीताम्बर भट्ट के चरणों में तलवार रख कर उसने अपना सिर झुकाया और क्षमा चाही। अपने हृदय का कुत्सित भाव भी उनके सामने प्रकट कर दिया और कहा—"गुरुदेव, मेरा उद्धार कीजिये।" इसी युवक कवि ने आगे चल कर अपने सुप्रसिद्ध स्तोत्र-ग्रन्थ 'हरिरस' की रचना

की और अपने गुरु श्री पीताम्बर भट्ट का निम्नलिखित शब्दों में स्मरण किया:—

लागूं हूँ पहली लुलें, पीताम्बर गुर पाय ।
भेद महारस भागवत, पामू जास पसाय ॥

अर्थात् जिसकी कृपा से मैंने भगवत् संबन्धी महारस का भेद प्राप्त किया, उस पीताम्बर गुरु के चरणों को मैं सबसे प्रथम झुक कर स्पर्श करता हूँ ।

(८७)

धारा नगरी के राजा पंवार उदयादित्य की दो रानियाँ थीं । पटरानी बाघेली से रिणधवल का जन्म हुआ और दूसरी रानी सोलंकी से जगदेव उत्पन्न हुआ । बाघेली जगदेव से बहुत द्वेष रखती थी, इसलिए उसे सिद्धराज जयसिंह के यहाँ नौकरी के लिए जाना पड़ा । जगदेव का बड़ा सम्मान हुआ और उसके अनुपम गुणों के कारण २०००) प्रति दिन उसे वेतन मिलने लगा । जगदेव ने अपने स्वामी की रक्षा के लिए कई बार प्राणों की बाजी लगा दी थी ।

एक बार कंकाली सिद्धराज जयसिंह के दरबार में आई और उसने जगदेव के दान की बड़ी प्रशंसा की । महाराज को यह सह्य न हुआ । उसने कंकाली से कहा—तुम जगदेव से दान ले आओ, मैं उससे चौगुना तुम्हें दूँगा । कंकाली ने कहा—इस

पृथ्वी पर पँवारों से दान में बाजी लगाने वाला कोई पैदा ही नहीं हुआ—

> प्रिथमी बड़ा पँवार, प्रिथमी पँवारां तणी ।
> एक उज्जैणी धार, बीजो आबू बैसणो ॥

अर्थात् पृथ्वी पर पँवार सबसे बड़े हैं और पृथ्वी पँवारों की ही है । एक ओर तो उज्जैन और धार में उनकी राजधानी है, दूसरी ओर आबू में ।

जगदेव ने कंकाली को अपना मस्तक काट कर दे दिया जिसके संबन्ध में निम्नलिखित पद्य प्रसिद्ध हैं—

> जो न भांण ऊगमैं, जो नवि वासग धर भल्लै
> राम बाण न ग्रहै, करण पारथ्यो जु मल्लै
> ब्रह्मा छोडे वेद, पवन जा रहै पुलंतो
> चन्द सूर ना वहै, रहै किम अमी झरंतो
> पंमार नाकारो नां करै, मेर-समो जाको हियौ
> कंकाली कीरति करै, सीस दान जगदे दियौ ॥

अर्थात चाहे भानु न उदय हो, चाहे शेष नाग पृथ्वी को धारण करना छोड़ दे, चाहे रामचंद्र समुद्र का मान-मर्दन करने के लिए बाण न चढ़ावें, चाहे कर्ण अर्जुन को परास्त करदे, ब्रह्मा वेद को धारण करना छोड़ दें, पवन बहना छोड़ दे, चन्द्र और सूर्य अपनी दैनिक यात्रा को छोड़ दें और चन्द्र से अमृत झरना

बन्द हो जाय, परन्तु जिसका मेरु के समान अचल हृदय है ऐसा पँवार वीर जगदेव याचक को नांही नहीं कर सकता। कंकाली कीर्ति-गान करती है कि जगदेव ने शीश-दान किया।

ग्यारह सौ इक्कांणवै, चैत तीज रवि वार।
सीस कंकाली भट्ट नैं, जगदे दियो उतार॥ *

सिद्धराज जयसिंह से इस प्रकार का दान न दिया जा सका। जगदेव के सामने उसे अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी। स्वामिभक्ति और दानशीलता के लिए जगदेव पँवार का नाम हमेशा लिया जायगा।

(८८)

राव अमरसिंहजी की मृत्यु के बाद उनकी स्त्री हाडी रानी ने सती होने की इच्छा प्रकट की। पति का शव आगरे के लाल किले में था जहाँ उसकी दुर्दशा हो रही थी। किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी कि दुर्ग में प्रवेश कर शव को बाहर ले आवे। इस अवसर पर गोपालदासजी चाँपावत के पुत्र वीररत्न श्री बलूजी ने अपने अद्भुत साहस और वीरता का परिचय दिया। अपने थोड़े से सवारों को लेकर बलूजी क़िले पर टूट पड़े और बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए अमरसिंहजी के शव को किले से बाहर निकाल लाये और हाडी रानी को सौंप दिया। रानी ने

---

* राजस्थानी बातां (पृ० ४८–९) श्री सूर्यकरण पारीक

अपने आपको अग्नि-ज्वालाओं के हवाले कर दिया। उस प्रसंग का निम्नलिखित दोहा राजस्थान में प्रसिद्ध है—

बलू पयंपै बेलियाँ, सतियाँ हाथ सँदेश।
पालि घड़ा पतिसाह री, आवां छां अमरेस॥

अर्थात् बलू सतियों के हाथ संदेश भेजता है कि हे अमरसिंह! शाही सेना को भगा कर मैं शीघ्र ही आ रहा हूँ।

अंत में शत्रु-सेना के साथ बड़ी वीरता से लड़ते हुए बलूजी सदा के लिए रण शय्या पर सो गये।

एक राजस्थानी गीत की निम्नलिखित पंक्तियों में बलूजी के मुख से क्या ही क्षत्रियोचित उक्ति कहलवाई गई है:—

"चक्रवतियाँ आखै चाँपावत, मंडियाँ मरण तणो नीमन्त।
भाजाड़णो हाथ भगवत रै, (तो) भाजाड़ो मोनैं भगवन्त॥"

अर्थात् चाँपावत बलू चक्रवर्ती राजाओं से कहता है कि युद्ध का निमित्त उपस्थित हो जाने पर यदि भगाना भगवान के हाथ में है तो वह मुझे भगा सके. तब मै जानूँ।

एक निर्भीक योद्धा के अतिरिक्त इस प्रकार की चुनौती भगवान तक को और कौन दे सकता है?

(८६)

चाँपा मारवाड़ के राव रणमलजी का पुत्र था। वि० सं० १५१६ में गोडवाड़ प्रान्त के सींधल, बालिया और सोनगरों ने

मिल कर इसकी गायें पकड़ ली थीं किन्तु इसने अपने अद्भुत पराक्रम से तीनों की सम्मिलित सेनाओं को परास्त कर उन्हें वापिस छुड़वा लिया। वि० सं० १५२२ में मांडू के सुलतान महमूद खिलजी ने गुजरात होकर दिल्ली जाते हुए चाँपा पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में चाँपा ने सुलतान के दाँत खट्टे कर दिये थे।

वि० सं० १५३६ में महाराणा रायसिंहजी की सहायता से सींधल राजपूतों ने चाँपा पर चढ़ाई की। शत्रुओं के बड़े बड़े वीरों को तलवार के घाट उतार कर यह योद्धा धराशायी हुआ। इस विषय का निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है:—

मांस पलच्चर सीस हर, हंस अपच्छर सत्थ।
चांपो चांपा फूल ज्यूँ, होग्यो हत्थो हत्थ॥

अर्थात् चांपा का मांस तो मांसभक्षी पक्षी ले गये, शीश महादेवजी ने ले लिया, जीव अप्सराओं के साथ चला गया। इस प्रकार चाँपा चांपा पुष्प की तरह हाथों हाथ लुट गया!

(६०)

उदयपुर के महाराणा जगतसिंह दानवीरता के लिए राजस्थान में अत्यन्त प्रख्यात हैं। उनकी लड़की का विवाह बूंदी के राव शत्रुशाल हाड़ा के साथ हुआ। इस विवाह में लाखों रुपये इनाम आदि में खर्च हुए। शत्रुशाल ने भी इस

खानदान से अपना संवन्ध होने के कारण अपने को धन्य समझा और चारणों को बहुत से हाथी दान में दिये। कहते हैं कि वे महलों की एक एक सीढ़ी पर चढ़ते गये और एक एक हाथी दान में देते गये किन्तु भूल से एक चारण संडायच हरी-दास को हाथी न दिया गया तो नाराज़ होकर उसने निम्नलिखित दोहा कहा—

जाति काया सांसवें, राव कबड्डी रेस।
शत्रशल माया ऊधमैं, छाया फल जगतेस॥

अर्थात् बड़े कंजूस शत्रुशाल एक कौड़ी के लिए अपने वदन को दुवला करते हैं, लेकिन इस समय जो धन वहा रहे हैं, वह महाराणा जगतसिंह की छाया पड़ने का नतीजा है!

(६१)

एक वार महाराणा राजसिंह (प्रथम) के पास कोई शाही मुलाजिम दिल्ली से आया। महाराणा ने दरवार करने का निश्चय किया और हुक्म दे दिया कि कोई ताजीमी सरदार दरवार में पीछे से न आवे। वारहठ उदयभाण को देर हो गई किन्तु उसने सोचा कि शाही एल्ची के सामने आज तो अवश्य ताजीम होनी चाहिए, फिर इज्जत के लिए कौनसा मौक़ा मिलेगा? इसलिए मना करने पर भी वह दरवार में पहुँचा। उसने सदा की भाँति आशीर्वाद दिया लेकिन महाराणा अपने आसन से नहीं उठे। तब वारहठ ने रुष्ट होकर कहा—

गया राणा जगतसिंह, जग का उजवाला।
रही चिरम्मी वप्पड़ी, कीधा मुँह काला॥

अर्थात् जगत को प्रकाशित करने वाले महाराणा जगतसिंह संसार से उठ गये। अब तो उनकी जगह काले मुँह की घुँघची रह गई है! महाराणा जगतसिंह अपने दान के लिए राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध हुए।

(६२)

रूपावास नामक ग्राम के बारहठ चारण राजसिंह की जब मृत्यु हुई तो महाराजा जसवन्तसिंह ने उसकी प्रशंसा में निम्नलिखित दोहा कहा था—

हथजोड़ा रहिया हमें, गढ़वी काज गरत्थ।
ऊ राजड़ छत्रधारियाँ, गो जोड़ावण हत्थ॥

अर्थात् अब जो चारण रहे हैं वे रुपयों के लिए हाथ जोड़ने वाले हैं परन्तु छत्रधारी लोगों से हाथ जुड़ाने वाला वह राजसिंह चला गया!

(६३)

बाँकीदास की मृत्यु पर जोधपुर के महाराज मानसिंह ने कहा था—

विद्या कुल विख्यात, राज काज हर रहस री।
बाँका तो विण बात, किण आगल मनरी कहाँ॥

अर्थात् विद्या और कुल में विख्यात हे बाँकीदान ! तेरे बिना राज-काज की प्रत्येक गुप्त बात किसके आगे कहें ?

इन्हीं महाराज द्वारा चारण जाति की प्रशंसा में कहा हुआ निम्नलिखित पद्य प्रसिद्ध है:—

"करण मुकर महलोक कतारथ, परमारथ ही दियण पतीज ।
चारण कहण जथारथ चौड़े, चारण वडा अमोलख चीज ॥"

अर्थात् पृथ्वीलोक को कृतार्थ करने, परमार्थ की प्रतीति दिलाने और यथार्थ बात को स्पष्ट कहने के लिए चारण लोग बड़ी अमूल्य वस्तु हैं ।

(६४)

महाराणा अजीतसिंह ने पाली के ठाकुर मुकुन्ददास चाँपावत राठौड़ को धोखे से मरवा डाला । इस हत्याकाण्ड को घटित करने वाले थे छिपिया के ठाकुर प्रतापसिंह ऊदावत और कूंपावत सबलसिंह । मुकुन्ददास के दो स्वामिभक्त राजपूत गहलोत भीमा और धन्ना ने प्रतापसिंह को मार कर बदला लिया और आप भी लड़ते हुए काम आये । इस घटना के सम्बन्ध में निम्नलिखित सोरठे प्रसिद्ध हैं—

आजूणी अधरात, महलज रूनी मुकन री
पातल री परभात, भली रुवाणी भीमड़ा ॥१॥
पाँच पहर लग पौल, जड़ी रही जोधाण री
रँगदे ऊपर रौल, भली मचाई भीमड़ा ॥२॥

चाँपा ऊपर चूक, ऊदा कदे न आदरै।
धन्ना वाली धूक, जण जण ऊपर जूझवै ॥३॥

अर्थात् आज आधी रात को मुकुन्ददास की स्त्रियाँ रोईं तो प्रातःकाल प्रतापसिंह की औरतों को हे भीमड़ा! तूने अच्छा रुलाया! ॥१॥

जोधपुर के दरवाजे पाँच पहर तक बन्द रहे। हे भीमड़ा! किले में तूने अच्छा कोलाहल मचाया ॥२॥

चाँपावतों पर ऊदावत कभी चूक नहीं करेंगे क्योंकि हर एक के दिल पर धन्ना का रोब गालिब हो रहा है ॥३॥

धन्ना और भीमा—इन दो स्वामिभक्त सरदारों की प्रशंसा में कहा हुआ निम्नलिखित दोहा तो और भी मार्मिक हुआ है—

भीमा धन्ना सारखा, दो भड़ राख दुबाह।
सुण चांदा सूरज कहै, राह न रोकै राह॥

अर्थात् सूर्य चन्द्रमा से कहता है कि भीमा और धन्ना जैसे दो बहादुर योद्धा यदि सदा पास रखे जायँ तो राहु ग्रह भी कभी रास्ता नहीं रोकेगा!

(६५)

बछराज गौड़ ने एक चारण को अरब पसाव का दान दिया था। चारण ने राजा की प्रशंसा में कहा—

देता अस्व पसाव दत, वीर गौड़ बछराज
गढ़ अजमेर सुमेर सूँ, ऊँचो दीसै आज ॥

अर्थात् हे बछराज! अस्व-पसाव का दान दिये जाने से अजमेर का किला आज सुमेरु पर्वत से भी ऊँचा दिखलाई पड़ता है।

(६६)

उदयपुर के महाराणा साँगा जैसे वीर थे, वैसे ही दानी भी थे। कहते हैं कि उन्होंने चित्तौड़ का राज्य महियारिया गोत्र के हरिदास नामक एक चारण को दान में दे दिया था जिसके प्रमाण स्वरूप एक गीत की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं:—

किव राणा कीधा कैलपुरा,
हिंदवाणा रिव बिया हमीर ॥

अर्थात् हे कैलपुरा! हिन्दुओं के सूर्य दूसरे हम्मीरसिंह! तूने चित्तौड़ का राज्य देकर कवियों को राजा बना दिया।

(६७)

ठ्ठा नगर पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद किसी कवि ने महाराज मानसिंह की प्रशंसा में कहा था—

दान जान गुन अधिक हो, सुनी न अजहूँ कान।
राचथ वारिधि बांधियो, ठ्ठा मारयो मान ॥

अर्थात् पूर्वज से सन्तान का गुण अधिक हो, यह कान से नहीं सुना था। लंका जाने के लिए रामचन्द्रजी को तो समुद्र बाँधना पड़ा था किन्तु मानसिंह ने हेला शहर को मारा; यह काम अपेक्षाकृत और भी कठिन था।

(६८)

सिद्धराज जयसिंह के समकालीन जूनागढ़ के रा' नवघण द्वितीय ने मरते समय अपने पुत्रों से चार वचन माँगे थे। उसके सबसे छोटे पुत्र रा' खेंगार द्वितीय (सन् १०९८-११२५) ने प्रतिज्ञा की कि मैं अपने पिता द्वारा अधूरे छोड़े हुए चारों काम पूरे कर दिखाऊँगा। पिता की मृत्यु के बाद खेंगार ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। इन चारों कामों में से एक काम था, सिद्धराज जयसिंह के कुल के चारण के गाल फाड़ना जिसने रा' नवघण की निन्दा की थी। इस कार्य को खेंगार ने बड़ी चतुराई से पूरा किया था। सिद्धराज जब मालवा गया हुआ था तो खेंगार ने पट्टन पर चढ़ाई की और पूर्वी द्वार को तोड़ डाला। राणकदेवी (जिसके साथ सिद्धराज की मँगनी स्थिर हो चुकी थी) को भी खेंगार ले आया और उसके साथ अपना विवाह कर लिया। यह देख कर सिद्धराज के चारण ने खेंगार की प्रशस्ति में अनेक पद्य कहे। खेंगार ने चारण का मुँह अपने बहुमूल्य रत्नों से भर दिया। अंत में चारण ने कहा—रहने दो बाबा, अब तो गाल फटने लगे !

इसके बाद सिद्धराज ने जूनागढ़ पर चढ़ाई की; १२ वर्षों तक वह लड़ता रहा किन्तु उसे सफलता न मिली। अंत में खेंगार के कुछ आदमी सिद्धराज की ओर चले गये। जूनागढ़ के किले में प्रवेश के लिए एक गुप्त मार्ग था जिसका पता सिद्धराज को इन आदमियों से मिल गया। सिद्धराज ने खेंगार को मार डाला और राणकदेवी को भी ले गया। सिद्धराज राणकदेवी को फुसला कर उसके साथ विवाह करना चाहता था किन्तु राणकदेवी किसी भी तरह राजी न हुई। तब सिद्धराज ने राणकदेवी के पुत्र माणेरा को (जिसकी अवस्था केवल ११ वर्ष की थी) मार डालना चाहा। कहते हैं, जब माणेरा को पकड़ने का प्रयत्न किया गया तो वह रोता हुआ अपनी माता के पीछे जाकर छिप गया। उस समय खेंगार की वीरपत्नी राणकदेवी ने कहा—

माणेरा मत रोय, मत कर रत्ती अंखियाँ।
कुल में लागे खोय, मरतां मा न सँभारिये॥

अर्थात् हे माणेरा! रो नहीं, अपनी आँखें लाल न कर; मरते समय अपनी माता को याद न कर। क्षत्रियपुत्र होकर यह तू क्या कर रहा है? ऐसा करने से तुम्हारे कुल में कलंक लगता है।

माणेरा मार डाला गया और अंत में राणकदेवी अपने वीर पति खेंगार के साथ सती हो गई।

खेंगार की प्रशंसा में कहा हुआ निम्नलिखित दोहा उल्लेखनीय है—

जे साँचे सोरठ घड्यो, घडियो रा' खेंगार ।
ते साँचो भांगी गयो, जालो रह्यो लुहार ॥

(६६)

बीजाणंद के माता-पिता उसे बाल्यावस्था में ही छोड़ कर स्वर्गवासी हो गये थे । वह दूसरों के ढोर चरा कर किसी तरह अपना जीवन बसर किया करता था । परन्तु भगवान ने उसे बड़ा मधुर कंठ दिया था । एक बार इसने दो तूंबों तथा एक पोले बाँस का टुकड़ा लेकर बीन तैयार करली और जब कभी समय मिलता, वह तारों की झंकार में तन्मय हो जाता । समय पाकर वह बीन बजाने में इतना दक्ष हो गया कि छत्तीसों राग-रागिनियाँ उसके सामने मानों हाथ जोड़े खड़ी रहतीं ।

एक बार बीजाणंद गोरवियाली नामक एक गाँव की सीमा पर पहुँचा । पानी पीने के लिए एक कुएँ पर गया जहाँ एक युवती पानी भर रही थी । बीजाणंद ने उससे पानी माँगा किन्तु उसकी कुरूपता को देख कर उस रमणी ने उसे पानी पिलाने से इन्कार कर दिया । बीजाणंद गाँव में गया और संयोग से इसी तरुणी के पिता चेदा नामक मालदार चारण के यहाँ ठहरा । रात को बीजाणंद ने जो अपनी बीन बजाई तो सब मंत्र-मुग्ध-से हो रहे । चेदा की पुत्री शेणी भी दीवार के पीछे से संगीत सुन रही थी ।

जिस शेणी ने वीजाणंद को कुरूप समझ कर पानी पिलाने तक से इन्कार कर दिया था, वही उसके संगीत से मुग्ध होकर उसे अपना हृदय-समर्पण करने के लिए तैयार हो गई। वीजाणंद वेदा के घर बहुधा आने-जाने लगा। वहाँ उसकी बड़ी आव-भगत होती। एक दिन प्रसन्न होकर वेदा ने वीजाणंद से कहा—मेरे यहाँ इतनी गाय-भैंसें हैं, ऋद्धि-सिद्धि है, तुम्हारी जो इच्छा हो माँगलो। वीजाणंद ने कहा—मैं जो तुमसे माँगूँगा वह देते न बनेगा। वेदा जब वचन-बद्ध हो गया तो वीजाणंद ने कहा—मैं शेणी के साथ पाणि-ग्रहण करना चाहता हूँ! यह सुन कर वेदा आगबबूला होकर कहने लगा—छोकरे, यह भी कोई माँगने का ढंग है? क्या तुम यह समझते हो कि मैं अपनी लड़की को तुम्हारे जैसे अनाथ और भटकते भिखारी के साथ कर दूँगा? "मेरी भूल हुई", यह कह कर वीजाणंद बिना खाये पिये चल निकला। समस्त चारण-मंडली ने वेदा को उपालम्भ देते हुए कहा कि यदि दिये हुए वचन का निर्वाह नहीं कर सकते थे तो वचन दिया ही क्यों था? वेदा ने इस कथन की सत्यता का अनुभव किया; वीजाणंद को वापिस बुला कर उसने कहा कि यदि आज से एक वर्ष के भीतर भीतर तू १०१ नवचंदी भैंसें लाकर मुझे दे देगा तब तो शेणी का विवाह तुम्हारे साथ कर दूँगा; नहीं तो मुझे मुँह भी न दिखाना।

वीजाणंद को अपनी संगीत-शक्ति पर विश्वास था। वह नवचंदी भैंसें प्राप्त करने के लिए गाँव गाँव लोगों को बीन बजा

कर रिझाता । लोग उसे मनचाहा वरदान माँगने के लिए कहते और वह नवचदी भैंसें माँगता किन्तु इस प्रकार की भैंसें आवें कहाँ से ? जिनके चारों पैर सफेद हों, पुच्छाग्र के बाल श्वेत हों, एक एक स्तन जिनके धवल हों, ललाट पर श्वेत तिलक हो, मुँह सफेद हो और एक एक आँख श्वेत हो—इस प्रकार की श्वेतरंगी चन्द्र-चिह्न वाली भैंसें नवचन्दी कहलाती हैं ।

दिन पर दिन बीत चला, अवधि के कुछ ही दिन बाकी रह गये। अंत में बाट देखते-देखते अंतिम दिन भी आ पहुँचा ।

> वरस वल्यां बादल वल्यां, भरती लीलाणी
> बीजाणंद रैं कारणैं. शेणी सूखाणी ॥

वर्ष भी वापिस आ गया, बादल भी लौट आये, (धरा और बादल के परस्पर मिलन से) पृथ्वी भी हरी-भरी हो गई किन्तु बीजाणंद के बिना एक शेणी ही झूर झूर कर सूख गई !

अवधि का जब अंतिम दिन था, शेणी उसी कुएँ पर गई जहाँ बीजाणंद ने उससे पानी माँगा था। आज वह मन ही मन कह रही थी कि यदि आज बीजाणंद आ जाय तो उसे जी भर कर पानी पिलाऊँ ! किन्तु अवधि का वह दिन भी बीत चला और बीजाणंद न लौटा । रात तो ज्यों त्यों करके शेणी ने काटी । प्रातःकाल अपने पिता के पास गई और बोली—मैंने हिमालय जाकर गलने का निश्चय कर लिया है । पिता ने कहा—बेटी, इस अवस्था में यह कैसा वैराग्य ? मैं तो अब

तुम्हारे संबन्ध के लिए अच्छा ठिकाना देखने की फिराक में हूँ। इस पागलपन को छोड़। शेणी ने उत्तर दिया—

चारणिया लख चार, बांधव कह बोलाविये
बीजा री वरमाल, औरां गल ओपै नहीं ॥

अर्थात वीजाणंद को छोड़ कर अन्य सब चारण मेरे बन्धु हो चुके; जिस वरमाला को मैं वीजाणंद के गले में डालने का निश्चय कर चुकी हूँ वह दूसरे के गले में शोभा नहीं देती।

१८ वर्ष की शेणी हिमालय के लिए चल पड़ी। कहते हैं जब हिमालय पहुँच कर वह गलने के लिए बैठी तो गलने न पाई। पांडव जैसे सबल और बलिष्ठ योद्धा जिस हिमालय में गल गये थे, वहाँ नवनीत के समान कोमलांगी शेणी ज्यों की त्यों रही; उसके शरीर को कोई क्षति नहीं पहुँची। तब शेणी ने पर्वतराज से प्रार्थना की—हे पिता, मुझे अपनी शरण में ले। तब हिमालय ने उत्तर दिया—बेटी, तू कुमारी है; यहाँ कोई अकेला नहीं गल सकता। शेणी ने वीजाणंद का पुतला बना कर उसे अपने पति के रूप में वरण कर लिया। पुतले को गोद में लेकर शेणी बर्फ में बैठ गई। थोड़ी देर पहले जिन पैरों में कुंकुमवर्णी आभा फूटी पड़ती थी, वे पैर अब काले पड़ गये, उनकी चेतना जाती रही। इतने में शेणी! शेणी! की आवाज सुनाई दी। शेणी के पास पहुँच कर वीजाणंद ने कहा—एक दिन की देर हो गई, तुम्हारे पिता को १०१ नवचंदी भैंसें देकर

आया हूँ। शेणी ! अब लौट चलो । शेणी ने कहा—घुटनों तक मेरा अंग गल चुका है । ऐसी अवस्था में तुम्हारे लिये मैं भार-रूप नहीं बनना चाहती । बीजाणंद ने उत्तर दिया—कोई चिन्ता नहीं ।

वल रे वीदा री, पांगली होय घण पालसों ।
कावड़ कांध करेह, जात्रा तुझ ले जावसों ॥

अर्थात् हे वेदा की पुत्री ! यदि तू पंगु हो गई है तो भी कंधे पर कावड़ रख कर मैं तुझे अपने साथ यात्रा (तीर्थ) के लिए ले चलूँगा ।

'नहीं वीजाणन्द ! अब यह नहीं हो सकता ।'

गलियौ आधौ गात, आधा में आधो रह्यौ ।
हमैं मसलता हात, बीझाणंद पाछा वलौ ॥

अर्थात् हे बीजानन्द ! अब तो शरीर का पौन अंश गल चुका है; अब निष्फल प्रयत्न न कर घर लौट जाओ । पर चारण ! एक कामना बच रही है; अंतिम बार अपनी बीन बजा कर सुनादे ।

बीजा जंत्र बजाड़, हेमाजल हेलो दिये ।
मोह्या मच्छीमार, मोही जल री माछली ॥

बीजाणंद ने बीन हाथ में ली । हिमालय हुंकारा देने लगा, जाल डालते हुए मछलीमार स्तब्ध की तरह ज्यों के त्यों रह गये,

मछलियाँ मानो संगीत सुनने के लिए जल के बाहर मुँह निकाल कर खड़ी रह गईं !

बीन की मोहक ध्वनि सुनते सुनते ही शेणी के शरीर की चेतना लुप्त हो गई !

प्रेमियों की जीवन-गाथा का क्या यही दुःखद अवसान है ? एक ओर मीरां की दर्दभरी पुकार है—

जो मैं ऐसा जाणती, प्रीत करे दुख होय ।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीत करे ना कोय ॥

तो दूसरी ओर टेनीसन कहते हैं—

"It's better to have loved and lost
Than never to have loved at all."

प्रेम के इस रहस्य को भला कोई कैसे समझावे ?

[राजस्थानी लोक-साहित्य में शेणी और बीजाणंद के संबन्ध में बहुत से दोहे व सोरठे प्रचलित हैं जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं:-]

कंकूवरण[1] कळाइयाँ, चूड़ी रत्तड़ियांह[2]
बीन्दा गल़ बिलसी नहीं, बाल़ूं बांहड़ियांह ॥१॥

---

१ कुंकुम (केशर) के रंग की २ लाल ।

सिंधड़ी रा सौदागरां, सैणल रा सैणांह ।
थींझल आगज़ बाँचज्यो, विध रूड़ी वैणांह ॥२॥

तरकस लंबा तीर, काबल रा तुरकां कनै ।
सैणी तणौ सरीर, थींझल बेतूं बाहरयौ ॥३॥

थींझा बाड़ पलासरी, खंखेरी खर जाय ।
नुगणां मानव सेवियां, पत सुगणां री जाय ॥४॥

थींझा हूँ बिलखी फिरूँ, दव री दाधी बेल ।
बणजारा री आग ज्यूं, गयो धकंती मेल ॥५॥

थीजड़ हल्ले हालियो, [3]अलल बछेरा लेह ।
सूँगा मूँघा [4]बेंचने, वेगी वलण करेह ॥६॥

इण थलवट में क्यों नहीं, सिरजी बावड़ियो ।
बीजो धोवत धोतियाँ, पग दै [5]पावड़ियो ॥७॥

इण थलवट में क्यों नहीं, सिरजी [6]बावलियो ।
बीजो चरत [7]करहला, [8]बाढत [9]कांवड़ियो ॥८॥

इण थलवट में क्यों नहीं, सिरजी नींबड़ियो ।
बीजो चारत करहला, [10]वलती छाँहड़ियो ॥९॥

---

३ चंचल ४ बेच कर ५ सीढ़ियों पर ६ बबूल ७ ऊँट ८ काटता ९ बेंत १० ढलती हुई ।

सैणी देय संदेसड़ा, हेमाजलि हूंता
सरवरि आज्यो पावणां, बीजाणंद वल़्ला ॥१०॥

सर भरियो पंखेर्गां[1], भरिया नदी निवांण[2] ।
सैणी दिये संदेसड़ा, ऊभी तट महरांण[3] ॥११॥

नो सीरष[4] दस सीरषां, तोइ थाढी मरूंह ।
कोइक बीजाणंद आवतो, एकणि चीर रहूंह ॥१२॥

ओ आंबा[5] ! ओ आंबली[6], गोरडियालो गाँव ।
बीजड़ ने बरबा[7] तणी, (म्हारै) हिये ज रैगो हांम[8] ॥१३॥

हल रे हीमाल़ा, पांणी ना परबत थया[9] ।
वड तंवड़ वाल़ाह, आज वाली[10] सोलण वीसरै ॥१४॥]

(१००)

कई सौ वर्ष पहले अवन्ती के एक साधु ने गहरी साँस लेते हुए कहा था—

तिक्खा तुरिय न माणिया
भड सिरि खग्ग न भग्गु,

---

१ पक्षियों से २ निम्नस्थल ३ समुद्र ४ बिस्तर ५ ओम ६ इमली ७ वरण करने की ८ इच्छा, हविस ९ हुआ १० प्यारी

एह जम्म नग्गहं गयउ,
गोरी कंठि न लग्गु *

यही प्राचीन पद्य राजस्थानी भाषा में निम्नलिखित रूप में अवतरित हुआ है:—

तीखा तुरी न माणिया, भड़ सिर खग्ग न भग्ग।
जन्नम अकारथ ही गयो, गोरी गले न लग्ग ॥

अर्थात् तेज घोड़ों को यदि खेलाया नहीं, योद्धाओं के गले पर यदि तलवार का वार नहीं किया और यदि सुन्दरी स्त्री को गले नहीं लगाया तो यह जन्म व्यर्थ ही गया !

(१०१)

निम्नलिखित दोहे में वीर की प्रकृति का अच्छा चित्रण हुआ है—

सादूलो आपै समो,
बियो न काय गिणन्त।
हाक बिराणी किम सहै,
घण गाजियाँ मरन्त ॥

अर्थात् शार्दूल अपने सामने दूसरे को कुछ नहीं समझता। सरे की ललकार को तो वह सहे ही क्या? यदि बादल को भी

* चारणो अने चारणी साहित्य पृ० ११६

वह गरजता हुआ सुन लेता है तो भी वह सिर पटक-पटक कर अपने प्राण दे देता है।

जब-जब मैं उक्त दोहे के अर्थ पर विचार करता हूँ, भारत के उस महत्वपूर्ण ऐतिह्य का चित्र मेरी आँखों के सामने नृत्य करने लगता है जिसमें दो नर-शार्दूलों ने अपने वीर-स्वभाव का अद्भुत प्रदर्शन किया है। प्रवाद प्रचलित है कि एक दिन धोलहर के जसराज हाला और हलवद (अहमदाबाद से चालीस कोस पर झालों का निवासस्थान) के झाला रायसिंह चौपड़ खेल रहे थे। उस समय एक व्यापारी जसराज के गाँव धोलहर की सीमा में होकर नगाड़ा बजाता हुआ आगे जा रहा था। हाला ने कहा—अरे, कौन है यह जो मेरे गाँव की सीमा में होकर मृदंग-ध्वनि करता जा रहा है? कौन है वह जो दुःसाहस करके मृत्यु को निमन्त्रण दे रहा है? मैं अभी युद्धार्थ प्रस्तुत होता हूँ। सईस को कहो, मेरा युद्ध का घोड़ा कस कर तैयार करे और सेनापति सैनिकों को लेकर उपस्थित हो।

यह सुन कर झाला रायसिंह कहने लगे—आप भी कैसी अनहोनी बात करते हैं! यह तो रास्ते का गाँव है; न जाने कितने यात्री इस मार्ग से आते जाते रहेंगे—आप भी किस-किससे लड़ाई मोल लेंगे? किन्तु जसराज जब अपनी बात पर अड़े रहे तब रायसिंह झाला कहने लगे कि आप लड़ाई नहीं लड़ सकेंगे। इस पर जसराज हाला ने ताना देते हुए

कहा कि जान पड़ता है, आप भी मेरी सीमा में नगाड़ा बजायेंगे। रायसिंह ने कहा कि यदि मैं सच्चा राजपूत हूँ तो अवश्य ही आपकी सीमा में आकर नगाड़ा बजाऊँगा। जसराज ने कहा कि यदि ऐसा होगा तो परस्पर युद्ध अवश्यंभावी है और उस युद्ध में आपकी कुशल भी नहीं। झाला ने कहा कि कुशल या अकुशल का निर्णय तो भविष्य करेगा किन्तु यह विश्वास रखिये कि सच्चा राजपूत युद्ध से कभी पराङ्मुख नहीं होता; युद्ध तो उसका व्यसन है और लड़ते-लड़ते वीर-गति को प्राप्त होने में वह गौरव का अनुभव करता है। जसराज से बिदा मांगते समय रायसिंह ने नगाड़ा बजाने की अपनी प्रतिज्ञा को फिर दृढ़तापूर्वक दोहरा दिया। हाला-झाला में परस्पर साले-बहनोई का सम्बन्ध था। किसी किसी का मत है वे परस्पर मामा-भानजा होते थे। किन्तु कुछ भी हो, राजपूत वीर यदि एक बार वचन-बद्ध हो जाता है तो वह सब प्रकार के सम्बन्धों को ठुकरा कर अपने वचन की रक्षा करता है। राजस्थान में 'मरद तो जब्बान बंको' लोकोक्ति के रूप में प्रचलित है। रायसिंह झाला ने प्रतिज्ञानुसार सेना सजायी। वह दो हजार सवार और करीब इतने ही पैदल सैनिक लेकर चला और हाला के गाँव की सीमा में प्रवेश करते ही उसने नगाड़ा बजवाया। जसराज भी तुरन्त अपनी सेना सजाकर युद्ध के लिए प्रस्तुत हुआ किन्तु रायसिंह ने जसराज की सेना देखकर कहा कि अभी तुम्हारे पास सेना थोड़ी है जब युद्ध

श्री ईश्वरदासजी के पास पहुँचे। ईश्वरदासजी ने कहा कि मैं तो अब वीररस की कविता नहीं करता, 'प्राकृतजन-गुणगान' करना मैंने अब छोड़ दिया है। अब मैं केवल भक्ति-सम्बन्धी पद ही बनाता हूँ जिनमें अपने आराध्य देव के महत्त्व का वर्णन करता हूँ। सामान्य नर-काव्य में अतिशयोक्ति से काम लेना पड़ता है और उससे झूठ को प्रश्रय मिलता है। हाला-झाला ने श्री ईश्वरदासजी से आग्रह-पूर्वक निवेदन किया कि आप अतिशयोक्ति और मिथ्या को छोड़ कर जैसा देखें वैसा ही युद्ध का वर्णन करने की कृपा करें। कवि ने इस शर्त पर कविता रचना स्वीकार कर लिया। कहा जाता है कि उक्त दोनों वीरों के युद्ध पर ७०० कुण्डलियाँ कवि ने लिखीं जो 'हाला झाला रा कुंडलियाँ' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस युद्ध में हाला की मृत्यु हुई और रायसिंह झाला विजयी हुआ। उदाहरण के तौर पर प्रथम कुण्डलिया यहाँ उद्धृत की जाती हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि इन कुंडलियों के लेखक बारहठ श्री आशानन्द हैं और इनकी संख्या के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ मतभेद है। ५५ कुण्डलियाँ मेरे देखने में आई हैं।

'हालाँ झालाँ होवसी
सीहाँ लत्थो-बत्थ
पैलाँ धर अपणावसी
(कै) धर अपणी परहत्थ।

करै घर आपणी
पारकी तिके नर
केवियाँ सीस खग
पाण करणां फचर
सत्रहराँ नार नहँ
नींद भर सोवसी
'हल – घलाँ सही
हालाँ घरे होवसी ।।'

1. शत्रुओं के